इकाई-1 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गद्य साहित्य
1.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
1.4.1 ब्रज भाषा में गद्य
1.4.2 खड़ी बोली में गद्य
1.5 हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास
1.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण
1.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन
1.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति
1.6 भारतेन्दु युग
1.7 द्विवेदी युग
1.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इकाई में हिन्दी गद्य के उद्भव विस्तार एवं विकास के विषय में चर्चा की गयी है। हिन्दी साहित्य इतिहास के आधुनिक युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः कविता में है। इससे पूर्व गद्य की कुछ रचनाएँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, लेकिन हिन्दी साहित्य परम्परा में उनका विशेष महत्व नहीं है गद्य का वास्तविक लेखन आधुनिक युग से हुआ, ऐसा क्यों हुआ तथा गद्य के विकास की स्थिति क्या रही, हम इस इकाई में इसी विषय पर विचार करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई में हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- गद्य एवं पद्य में अन्तर कर सकेंगे।
- हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के विषय में जान सकेंगे।
- ब्रज भाषा तथा खडी़ बोली के गद्य के सम्बन्ध में जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे।
- अंग्रेजी शासन काल में भाषा सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
- खडी़ बोली की प्रारम्भिक स्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे।
- भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के गद्य साहित्य के उद्भव और विकास का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द एवं उनके पश्चात् के गद्य साहित्य के उद्भव व विकास पर संक्षेप में प्रकाश डाल सकेंगे।
- विभिन्न गद्यकारों के योगदान का उल्लेख कर सकेंगे।

1.3 गद्य साहित्य

आपने अब तक अनेक उपन्यास कहानी और निबन्ध पढ़े होंगे, किन्तु क्या कभी आपने विचार किया है कि साहित्य की इन विधाओं का विकास कैसे हुआ? इस इकाई के अन्तर्गत हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि गद्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? आपने कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास आदि की रचनाएँ पढ़ी होंगी, इससे आपको अनुभव हुआ होगा कि कबीर, तुलसीदास, सूरदास और केशवदास की रचनाएँ उपन्यास और कहानी से भिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं। साहित्य की भाषा में कबीर, तुलसीदास, आदि की रचनाओं को छन्दोबद्ध रचना या कविता कहा जाता है, जबकि उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि को गद्य । इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट रूप में जानने के लिए आप कबीरदास की इन पंक्तियों को पढिए ।

वकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल,
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल।।

अब नीचे दी गयी इन पंक्तियों की तुलना कबीरदास की उपरोक्त रचना से कीजिये। निम्नलिखित पंक्तियाँ डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के निबन्ध कबीर और गाँधी से उद्धृत की गयी है।

‘‘यदि कबीर अपनी ही कविता के समान सीधी सादी भाषा में उल्लिखित आदर्श हैं तो गाँधी उसकी और भी सुबोध क्रियात्मक व्याख्या, यदि प्रत्येक व्यक्ति इस विशद व्याख्या की प्रतिलिपि बन सके तो जगत का कल्याण हो जाय।"

उपरोक्त दोनों उदाहरणों की तुलना करने पर आप स्पष्ट रूप से जान जायेंगे कि भाषा के इन दो प्रयोगों में क्या भिन्नता है? छन्दोबद्ध कविता में गेयता तथा लय होती है, जबकि गद्य में भाषा व्याकरण के अनुरूप होती है। आरम्भ में समस्त संसार के साहित्य में काव्य रचना का प्रमुख स्थान था। भारत में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य इसी काव्य कला के अनुपम उदाहरण हैं। काव्य के अतिरिक्त नाटकों में काव्य भाषा का प्रयोग अधिक हुआ। प्रश्न यह कि आधुनिक युग से पहले गद्य की अपेक्षा कविता में ही रचना क्यों होती थी? उत्तर है कि कविता को गेयता, छन्दबद्धता और लय के कारण याद रखना सरल था। प्राचीन काल में मुद्रण कला का अभाव था, इसलिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहित्य

को मौखिक परम्परा से आगे बढ़ाने में कविता भाषा सहायक थी। प्राचीन काल में गद्य में भी साहित्य रचना होती थी लेकिन इन रचनाओं की संख्या सीमित थी। उस युग में भावों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ काव्य रचना की जाती थी वहाँ सैद्धान्तिक निरूपण के लिए गद्य का प्रयोग होता था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संस्कृत साहित्य का लक्षण ग्रन्थ '' काव्य प्रकाश'' है जिसमें भावों को प्रकट करने के लिए कविता का प्रयोग हुआ है तो सिद्धान्त निरूपण के लिए संस्कृत गद्य का।

अब आपके मन में रह रहकर यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि आधुनिक युग में कविता की प्रमुखता होने पर भी गद्य में लेखन क्यों आरम्भ हुआ। इसके क्या कारण थे? आदि काल में परस्पर विचार- विनिमय के लिए एक भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था। यह सामान्य बोल-चाल की भाषा थी, जो कि कविता भाषा से भिन्न थी। भाषा के इसी रूप को गद्य कहा गया था। भाषा का यह रूप जो उसकी व्याकरणिक संरचना के सबसे अधिक निकट हो, गद्य कहलाता है, जबकि पद्य में व्याकरणिक नियमों की नहीं छन्द, लय और भावों की प्रधानता होती है। गद्य लेखन पूर्व था लेकिन मुद्रण प्रणाली के अस्तित्व में आने के पश्चात् ही प्रचलन में आया। आज सभी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों के लेखन में इस गद्य भाषा का प्रयोग हो रहा है।

1.4 हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि

हिन्दी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ? इस पर चर्चा करने के साथ-साथ ही हम अब यहाँ पर यह भी विचार करेंगे कि हिन्दी गद्य किस भाँति विकसित होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी भाषा में गद्य रचनाएँ अधिक नहीं थी। उस समय ब्रजभाषा साहित्य की भाषा थी। जिसमें भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए कविता भाषा का ही प्रयोग होता था लेकिन बोलचाल की भाषा गद्य थी। ब्रजभाषा के बोल-चाल के इस रूप का प्रयोग गद्य रचनाओं में होता था। हिन्दी गद्य विकास की दृष्टि से इन रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए इन प्रारम्भिक रचनाओं के इस रूप से परिचय होना भी अनिवार्य है।

1.4.1 ब्रजभाषा गद्य:

जैसा कि आप जानते हैं कि विद्वानों की भाषा सामान्य जन की भाषा से भिन्न होती है। जिस समय ब्रजभाषा में कविता का सृजन हो रहा था, उसी समय जन सामान्य पारस्परिक बोल-चाल में ब्रजभाषा के गद्य रूप का प्रयोग करता था। लेकिन जब किसी संत महात्मा या कवि को अपने पंथ, सम्प्रदाय या मत के शुभ सन्देश सामान्य जनता तक पहुँचाने होते थे, वे अपनी कविता भाषा को छोड़कर ब्रजभाषा की बोल चाल की भाषा का ही प्रयोग करते थे। उनकी यही बोल चाल की भाषा धीरे-धीरे साहित्य की गद्य भाषा भी बनी। इसके साथ ही अनेक काव्य ग्रन्थों को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए विद्वानों ने टीकाएं भी लिखीं, ये टीकाएं भी गद्य भाषा में होती थीं। इस युग की गद्य- रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

"सो वह पुरूष सम्पूर्ण तीर्थ स्थान करि चुकौ, अरू सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राहमननि को दे चुको, अरू सहस्र जज्ञ कटि चुकौ, अरू देवता सब पूजि चुकौ, पराधीन उपरान्ति बन्धन नहीं, सुआधीन उपरान्त मुकति नाहीं, चाहि उपरान्त पाप नाहीं, अचाहि उपरान्त पुति नाहीं", (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय -पृष्ठ 110)

उपरोक्त रचना अंश 'गोरख-सार' का गद्यांश है, जिसे संवत् 1400 की रचना माना जाता है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु बल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ जी ने ब्रज भाषा गद्य में 'श्रृगार मण्डन' लिखा, इनके बाद इनके पौत्र गोकुल नाथ ने ब्रजभाषा में चौरासी बैष्णव की वार्ता' तथा दो सौ बावन बैष्णवन की वार्ता'' लिखी, इनमें बैष्णव भक्तों की महिमा व्यक्त करने वाली कथाऐं लिखी हैं। इन सबकी गद्य भाषा व्यस्थित एवं बोल चाल रूप में हैं। इस भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

''सो श्री नंदगाम में रहा हतो, सो खंडन, ब्राहमण शास्त्र पढयों हतो, सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही से सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पाखो हतो,'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

इसी भाँति 1660 विक्रम संम्वत् के आस-पास भक्त नाभादास की ब्रजभाषा गद्य में लिखी 'अष्टयाम' नामक रचना प्रकाश में आयी, इसकी भाषा सामान्य बोलचाल की है। उस युग में ब्रजभाषा में गद्य की रचना कम ही होती थी। लेकिन इसका मुख्य कारण था। ब्रजभाषा में गद्य की क्षमता का विकास न हो पाना, क्योंकि ब्रजभाषा एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती थी। इसलिए वह ब्रज मण्डल के बाहर सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित नहीं हो पायी, जिससे इसमें गद्य का विकास उस तरह नहीं हो पाया जिस तरह से होना चाहिए था। इसी कारण खड़ी बोली ही गद्य भाषा को विकसित करने में अधिक सार्थक हुई।

1.4.2 खड़ी बोली में गद्य

ब्रजभाषा गद्य भाषा की परम्परा आगे न बढ़ाने के कारण खड़ी बोली में गद्य का विकास होने लगा, इसका सबसे बड़ा कारण था खड़ी बोली का जन साधारण की भाषा होना, ब्रजभाषा के पश्चात् इस भाषा में साहित्य का सृजन होने लगा, चूँकि खड़ी-बोली का क्षेत्रफल बड़ा था। इसलिए यह धीरे-धीरे पद्य और गद्य भाषा बनने लगी। फिर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

14वीं शताब्दी में खड़ी बोली दिल्ली के आस पास की भाषा थी। इसलिए मुगलकाल में यह शासन और जनता की सम्पर्क भाषा बनी। चूँकि मुगलों की मातृ भाषा फारसी थी, इसलिए जब यह खड़ी बोली के सम्पर्क में आयी तो इसकी शब्दावली खड़ी बोली में प्रवेश करने लगी और इससे फारसी मिश्रित खड़ी बोली का जन्म हुआ, शिक्षित लोग इस भाषा को फारसी लिपि में लिखने लगे, तब इस नई शैली को हिन्दवी, रेख्ता और आगे चलकर उर्दू नाम दिया गया। कवियों ने इस भाषा में शायरी आरम्भ कर दी, चौदवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में रची गयी एक पहेली दृष्टव्य है-

एक थाल मोती से भरा, सबके ऊपर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।

अमीर खुसरों के पश्चात् खड़ी-बोली का विकास दक्षिण राज्यों के रचनाकारों ने किया। दक्खिनी हिन्दी के रूप में वहाँ 14 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक अनेक ग्रन्थों की रचनाऐं हुई, जिनमें गद्य रचनाओं का भी मुख्य स्थान

है। ख्वाजा बन्दा नवाज़ गैसू दराज (1322-1433) शाह मीराँ जी (-1496) बुरहानुद्दीन जानम (1544-1583) और मुल्ला वजही जैसे साहित्यकारों ने काव्य रचनाओं के साथ गद्य ग्रन्थ भी लिखे। मुल्ला वजही ने 1635 ई0 में अपने प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ ''सब रस'' की रचना की जिसका आरम्भ इस प्रकार से होता है-

''नकल-एक शहर था। शहर का नाउं सीस्तान, इस सीस्तान के बादशाह का नाउं अक्ल, दीन और दुनिया का सारा काम उस तै चलता, उसके हुक्मवाज जरी कई नई हिलता..... वह चार लोकों में इज्जत पाए''। (दक्खिनी हिन्दीः विकास और इतिहास- डॉ0 परमानन्द पांचाल)।।

इसी दक्खिनी हिन्दी का एक रूप खड़ी बोली भी थी । यो तो यह खड़ी बोली प्रारम्भ में कबीर, खुसरो, कवि गंग और रहीमदास की कविता की भाषा बन चुकी थी, लेकिन गद्य भाषा के रूप में इसका प्रयोग अंग्रेज पादरी और अफसरों ने किया क्योंकि वे इस गद्य भाषा के माध्यम से जनता तक पहुँचता चाहते थे। सन् 1570 में मुगल बादशाह के दरबारी कवि गंग की प्रसिद्ध रचना ''चंद छन्द बरनन की महिमा'' में हिन्दी खडी़ बोली के जिस गद्य रूप के दर्शन होते हैं वह शिष्ट और परिष्कृत खडी़ बोली का गद्य है।

''इतना सुनके पातसाह जी श्री अकबर साह जी आध सेन सोना नरहा चारक को दिया। इनके डेढ़ सेर सोना हो गया, रास वचना पूरा भया, आम खास बारखास हुआ।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ 281)

प्रस्तुत उदाहरण से ऐसा लगता है यह आज की शुद्ध परिमार्जित गद्य रचना है इसके पश्चात् खड़ी बोली ने साहित्य में अपना स्थान बना लिया और इससे तेजी से गद्य का विकास हुआ।

अभ्यास प्रश्न

आपने अब तक खडी़ बोली गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय प्राप्त किया। आपका ज्ञान जानने के लिए अब नीचे कुछ बोध प्रश्न दिये गये हैं। इनका उत्तर दीजिये। पाठ के अन्त में इन प्रश्नों के उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये, इससे आपको ज्ञात होगा कि आपने ठीक उत्तर दिये हैं या नहीं।

(1) प्राचीन काल में साहित्य की रचना कविता में होती थीं, नीचे दिये कारणों में तीन सही और एक गलत है, गलत कारण के सामने (×) का निशान लगायें।

1. कविता में गेयता होती है, इससे इसको याद रखना सरल है।
2. प्राचीन काल में मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास नहीं हुआ था।
3. कविता अभिव्यक्ति का सबसे अक्षम रूप है।
4. प्राचीन काल में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश नहीं होता था।

(2) भक्त नाभादास की ''अष्टयाम'' की रचना निम्नलिखित विक्रम सम्वत् में हुई। सही विकल्प के सामक्ष (√) चिह्न लगाए।

1. विक्रम सम्वत् 14400 में ( )
2. विक्रम सम्वत् 1500 में ( )
3. विक्रम सम्वत् 1660 में ( )
4. किक्रम सम्वत् 1700 में ( )

(3) नीचे कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं। उनके रचनाकारों का नाम लिखिए।

1. श्रृंगार मण्डन ( )
2. चौरासी बैष्णव की वार्ता ( )
3. सब रस ( )
4. चंद छन्द बरनन की महिमा ( )

1.5 हिन्दी ग़द्य का उद्भव व विकास

खड़ी बोली गद्य का जो रूप वर्तमान में हमारे समक्ष है वह सहजता से विकसित नहीं हुआ, अपितु इसके इस रूप निर्माण में अनेक परिस्थितियों, संस्थाओं और व्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिनकी चर्चा हम यहाँ करने जा रहे हैं।

1.5.1 हिन्दी गद्य के उद्भव व विकास के कारण

भारत में अंग्रजी साम्राज्य की स्थापना से यहाँ परिवर्तनों की जो श्रृंखला प्रारम्भ हुई, इसका भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा; इनमें से कई परिवर्तनों का सीधा-सीधा सम्बन्ध हिन्दी गद्य विकास से भी है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिये जा रहा है। जैसा आप जानते हैं भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ हिन्दु, मुस्लमान, ईसाई सभी परस्पर मिलकर इस देश के विकास में अपना योगदान देते हैं। दक्षिण भारत के केरल और पूर्वी भारत के छोटे-छोटे राज्यों में ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या काफी है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक इस देश में आये। जब भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ तो इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी, इनकी इन्ही गतिविधियों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चूँकि उस युग में जन सामान्य की बोल चाल की भाषा हिंदी गद्य थी। इसलिए इन धर्म प्रचारकों ने जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए छोटी-छोटी प्रचार पुस्तकों का निर्माण हिन्दी गद्य में किया। इसी क्रम में 'बाइबिल' का हिन्दी गद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। जिससे हिंदी गद्य का काफी विकास हुआ।

नवीन आविष्कार- अंग्रेजों ने अपनी स्थति को और सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और दूरसंचार के नये साधनों का प्रयोग किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1844 से सन् 1856 तक इस देश में रेल और तार के साधन जोड़ दिये थे। यातायात के तेज संसाधनों से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। अनेक पुस्तक प्रकाशित हुई जिससे हिन्दी गद्य लेखन का भी तीव्रता से विकास हुआ।

शिक्षा का प्रसार- सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को जन्म दिया। इससे पूर्व इस देश की शिक्षा फारसी और संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति से जहाँ-जहाँ भी शिक्षा दी जाती थी, उन स्कूल कॉलेजों में हिन्दी, उर्दू पढ़ाने की विशेष व्यवस्था होती थी। सन् 1800 ई0 में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में सन् 1824 में हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रबन्ध हुआ। इससे पूर्व सन् 1823 में आगरा कॉलेज भी स्थापना हुई जिसमें हिन्दी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हुआ। इसने कॉलेजों में हिन्दी शिक्षा समुचित रूप से संचालित हो इसके लिए हिन्दी के अच्छे पाठ्यक्रम बनाये। इस शिक्षा विस्तार से भी हिन्दी गद्य का अच्छा विकास हुआ।

समाज सुधार आन्दोलन- 19 वीं शताब्दी समाज सुधार की शताब्दी थी। इस सदी में भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने के लिए अनके आन्दोलन हुए। चूँकि समाज सुधार के आन्दोलनों को जिन नेताओं ने संचालित किया उन्हें जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ी। 'ब्रहम समाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय ओर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने मतों को समाज तक पहुँचाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह हिन्दी भाषा थी। इसी से हिन्दी गद्य को एक नया रूप मिला।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन- मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा जिनके माध्यम से अनके गद्य लेखक लिखने लगे। 30 मई सन् 1826 ई0 में कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने 'हिन्दी' के प्रथम पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह हिन्दी का साप्ताहिक पत्र था। हिन्दी के पाठकों की संख्या कम हाने के कारण यह 4 दिसम्बर सन् 1827 को बन्द हो गया। इस पत्र के माध्यम से भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। 9 मई सन् 1829 को कलकत्ता से हिन्दी के दूसरे पत्र 'बंगदूत' का प्रकाशन हुआ। इसी तरह कोलकाता से प्रजामित्र' सन् 1845 में 'बनारस' से 'बनारस अखबार, सन् 1846 में 'मार्तण्ड' जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन सबकी गद्य भाषा हिन्दी थी। इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। इन्ही पत्र पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को और अधिक विकसित और परिमार्जित किया।

1.5.2 प्रारम्भिक गद्य लेखन

सन् 1803 ई0 में फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के हिन्दी उर्दू प्राध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाने के लिए कई मुंशियों की नियुक्ति की। इन मुंशियों में 'नियाज' मुंशी इंशा अल्ला खाँ जैसे हिन्दी-उर्दू के विद्वान थे जिन्होंने हिन्दी गद्य को एकरूपता प्रदान की।

मुंशी सदासुखलाल नियाज- जन्म सं. 1803 मृत्यु सं. 1881 - दिल्ली निवासी मुंशी सदासुखलाल, फारसी के अच्छे कवि और लेखक थे। इन्होंने 'बिष्णु पुराण' के उपदेशात्मक प्रसंग को लेकर एक पुस्तक लिखीं इसके पश्चात् मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत कथा के आधार पर 'सुख सागर' की रचना की जिसकी गद्य व्यवस्थित और निखरी हुई है। इनकी इस गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है-

''मैत्रेय जी ने कहा'' हे विदुर प्रचेता लोग साधु व बैष्णव की बड़ाई व परमेश्वर के मिलने के उपाय महादेव जी से सुनकर आनन्द पूर्वक बीच पढ़ने वाले स्रोतों को व करने ध्यान नारायण जी को लीन हुए। जब उनको इस हजार वर्ष हरि

भजन करते बीत गये तब परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दर्शन देके बड़े हर्ष से उन्हें वरदान दिया''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 112)

मुंशी इंशा अल्ला खाँ- (जन्म सं0 1818- मृत्यु सं0 1857) मुर्शिदाबाद में जन्म लेने वाले मुंशी इंशा अल्ला खाँ उर्दू के बहुत अच्छे शायर थे। इन्होंने सम्वत् 1855 और सम्वत् 1860 के मध्य 'उदयभान चरित' या रानी केतकी की कहानी' लिखी। इनकी गद्य भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी थी। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है-

''कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों नदियों के थे। पक्के चाँदी के से होकर लोगों को हक्का-बक्का कर रहे थे। नवाड़े, बन्जरे, लचके, मोरपंखी, श्याम सुन्दर, राम सुन्दर और जितनी ढब की नावे थी। सुनहरी, रूपहरी, सजी-सजाई। कसी-कसाई सौ-सौ लचके खतियाँ फिरतियाँ थी''(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय - पृष्ठ 114)

श्री लल्लू लाल जीः- (जन्म सं0 1820- मृत्यु सं0- 1882) आगरा निवासी लल्लू जी 'लाल' गुजराती ब्राहमण थे। फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्ति के बाद इन्होंने सम्वत् 1860 में भागवत पुराण के दशम् स्कंध के आधार पर प्रेम सागर नामक ग्रन्थ का हिन्दी गद्य में सृजन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने ' वैताल पच्चीसी'' 'सिहासन बत्तीसी' ,'माधव विलास' तथा 'सभा विलास' नामक ग्रन्थ भी लिखे। इनकी गद्य भाषा का एक उदाहरण निम्नवत् है।

''महाराज इसी नीति से अनेक-अनेक प्रकार की बात कहते-कहते और सुनते-सुनते जब सब रात व्यतीत भई और चार घड़ी पिछली रही तब नन्दराय जी से उधौ जी ने कहा कि महाराज अब दधि मथनी की विरियाँ हुई, जो आकी आज्ञा पाऊँ तो युमना स्नान कर आऊँ'' (प्रेम सागर)

पंडित सदलामिश्रः- (जन्म सम्वत् 1825-मृत्यु सं. 1904) बिहार निवासी पंडित सदलमिश्र ने अपनी पुस्तक ''नासिकेतोपाख्यान'' फोर्ट विलियम कॉलेज में लिखी। इनकी भाषा लल्लू जी लाल; की तरह ही ब्रज भाषा के शब्दों से ओत प्रोत है। जिसको एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''इस प्रकार नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किये से जो भोग होता ळै सो ऋषियों को सुनाने लगे कि गौ, ब्राहमण माता -पिता , मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरू, इनका जो बध करते हैं वे झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं।" (नासिकेतोपाख्यान)

1.5.3 अंग्रेजों की भाषा नीति

अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की राज भाषा फारसी थी। लार्ड मैकाले के प्रयत्नों से सन् 1835 में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। सन् 1836 तक अदालतों की भाषा फारसी थी लेकिन अंग्रजों ने अपनी भाषाई नीति के अन्तर्गत सन् 1836 में सयुक्त प्रान्त के सदर बोर्ड अदालतों की भाषा 'हिन्दी' कर दी, लेकिन इसके पश्चात् अंग्रेजों की ओर से हिन्दी के विकास के लिए कुछ और नहीं किया गया। ऐसे समय में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए जो कार्य किये गये वे उल्लेखनीय है-

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द- (जन्म सं. 1823- मृत्यु सं. 1895) राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्दी शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर थे। ये हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे इसलिए ये इसे पाठ्यक्रम की भाषा बनाना चाहते थे। चूँकि उस समय साहित्य के पाठ्यक्रम के लिए कोई पुस्तकें नहीं थी इसलिए इन्होंने स्वयं कोर्स की पुस्तकें लिखी और इन्हें हिन्दी पाठ्यक्रमों में स्थान दिलाया। इन्ही के प्रयत्नों से शिक्षा जगत ने हिन्दी को कोर्स की भाषा बनाया। इस बाद उन्होंने बनारस से 'बनारस अखबार निकाला। इसीके द्वारा राजा शिवप्रसाद ''सितारे हिन्द'' ने हिन्दी का प्रचार प्रसार किया। ये विशुद्ध हिन्दी में लेख लिखते थे। राजा जी ने स्वयं हिन्दी कोर्स लिए पुस्तके ही नहीं लिखी अपितु पंडित श्री लाल और पंडित बंशीधर को भी इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वीरसिंह का वृतान्त' आलसियों का कोड़ा जैसी रचनाओं का सृजन भी किया। इनकी गद्य भाषा कितनी प्रभावशाली और सरल थी, इसका उदारहण ''राजा भोज का सपना'' का यह गद्यांश है।

''वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो। उनकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप्त रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते।''

राजा जी उर्दू के पक्षपाती भी थे। सन् 1864 में इन्होंने ''इतिहास तिमिर नाशक'' ग्रन्थ लिखा।

राजा लक्ष्मण सिंह (जन्म सम्वत् 1887- मृत्यु सम्वत् 1956)-आगरा निवासी राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ स्वीकारते थे। फिर भी ये हिन्दी उर्दू शब्दावली प्रधान गद्य भाषा का प्रयोग करते थे। राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'मेघदूतम' अभिज्ञान शांकुन्तलम् और रघुवंश का हिन्दी अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दी के गद्य विकास के लिए सन् 1841 में 'प्रजा हितैषी' पत्र भी सम्पादित और प्रकाशित किया। इनकी गद्य भाषा कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी। प्रकाशित उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तलम् का यह अनुदित ग़द्य है-

अनसुया (हौले प्रियबंदा से) सखी मैं भी इसी सोच विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रकट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है क तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की पुजा को विरह में व्याकुल छोड़ कर यहाँ पधारे हो? क्या कारण है? (हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-300)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह के अलावा कई अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिन गद्य लेखकों ने अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किये तथा कई पाठ्य पुस्तकें लिखी उनमें , श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, श्री ब्रजवासी दास, श्री रामप्रसाद त्रिपाठी श्री शिवशंकर, श्री बिहारी लाल चौबे, श्री काशीनाथ खत्री, श्री रामप्रसाद दूबे आदि प्रमुख हैं। इसी अवधि में स्वामी दयान्द सरस्वती ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' जैसे ग्रन्थ की हिन्दी गद्य में रचना करके हिन्दू धर्म की कुरीतियों को समाप्त किया। हिन्दी गद्य के विकास में जिन और लेखकों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है उनमें से बाबू नवीन चन्द्र राय तथा श्री श्रद्धाराम फुल्लौरी हैं।

बाबू नवीन चन्द्र राय ने सन् 1863 और सन् 1880 के मध्य हिन्दी में विभिन्न बिषयों की पुस्तकें लिखी और लिखवाई, साथ ही ब्रहम समाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने के लिए सन् 1867 में ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका का

प्रकाशन किया। इसी तरह श्री श्रृद्धानन्द फुल्लौरी ने 'सत्यामृत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', तत्वदीपक, 'धर्मरक्षा', उपदेश संग्रह' पुस्तकें लिखककर हिन्दी गद्य के विकास एक नयी दिशा प्रदान की।

अभ्यास प्रश्न

(4) हिन्दी गद्य विकास के कारण थे-

1. ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान ( )
2. मुद्रण प्रणाली का प्रारम्भ ( )
3. समाज सुधार आन्दोलन ( )
4. उपरोक्त सभी ( )

(5) 'सत्यार्थ प्रकाशन' की रचना की-

1. स्वामी विवेकानन्द ने ( )
2. राजा राय मोहन राय ने ( )
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ( )
4. पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने ( )

(6) पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से एक पत्र निकाला।

1. बंगदूत
2. मार्तण्ड
3. उदन्त मार्तण्ड
4. प्रजामित्र

(7) कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का हिन्दी में अनुवाद किया।

1. जान गिल क्राइस्ट ने ( )
2. राजा शिप्रसाद सितारे हिन्द ने ( )
3. राजा लक्ष्मण सिंह ने ( )
4. इंशा अल्ला खाँ ने ( )

(8) नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

1. लल्लू लालजी फोर्ट विलियम कालेज से सम्बद्ध थे। हाँ/ नहीं

2. मुंशी सदासुख लाल ने ' प्रेमसागर' की रचना की हाँ/ नहीं
3. पंडित सदलामिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान की रचना की। हाँ/ नहीं
4. पंडित लक्ष्मण सिंस ने राजा भोज का सपना लिखा हाँ/ नहीं

लघु उत्तरीय

1. अंग्रेजों की भाषा नीति पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियाँ)
2. हिन्दी गद्य के विकास में पत्र पत्रिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिये (मात्र तीन पंक्तियों में)

1.6 भारतेन्दु युग (सन् 1868-1900)

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हिन्दी गद्य का व्यापक प्रसार हुआ और इससे साहित्य रचना के पर्याप्त अवसर प्राप्त हुए। इसी अवधि में महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने हिन्दी साहित्य संसार में प्रवेश किया। जिनके प्रयत्नों से हिन्दी गद्य को नयी दिशा प्राप्त हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म 2 सितम्बर सन् 1850 ई. को बनारस के एक धनी परिवार में हुआ। इनके साहित्य प्रेमी पिता श्री गोपाल चन्द्र ने नहुष वध नाटक तथा कुछ कविताऐं लिखी। पिता के इन्ही संस्कारों की छाप भारतेन्दु हरिशचन्द्र पर पड़ी इसलिए इन्होंने मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में काव्य रचना प्रारम्भ कर दी। विभिन्न भाषाओं के जानकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने युवावस्था में कई नाटक और काव्यों के लेखन के अतिरक्ति 'कविवचन सुधा; हरिशचन्द्र मैगजीन' तथा हरिशचन्द्र चन्द्रिका' नामक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया। इन्ही पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी के अनेक गद्य लेखक प्रकाश में आये। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने उस युग तक प्रयुक्त खड़ी बोली के गद्य को परिमार्जित किया। साथ ही भारतेन्दु जी ने गद्य के विभिन्न क्षेत्रों नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि विधाओं में नयी परम्परा का सूत्रपात किया। 35 वर्ष की अल्पायु में हिन्दी साहित्य के लिए किये गये इनके कार्यों को हिन्दी गद्य विकास की दिशा में सर्वाकृष्ट कार्य स्वीकारा जाता है। ये अपनी भाषा के विकास के प्रबल पक्षधर थे। इनका यह मानना था।

'' निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा शान के, मिटत न हिय को शूल''।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने ''वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति'', प्रेम योगिनी, विषस्य विषऔषधम्, श्री चन्द्रावली नाटिका, भारत दुर्दशा, नील देवी और अंधेर नगरी जैसे मौलिक नाटक लिखे। इनके अनुदित नाटक हैं- ''विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, मुद्राराक्षस, सत्य हरिशचन्द्र, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बुंध आदि। स्वयं लेखन के अतिरिक्त भारतेन्दु ने अपने समय के अनेक लेखकों को गद्य लेखन के लिए प्रेरित किया। इससे लेखकों की एक ऐसी मंडली बनी जिसने भारतेन्दु की इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु की इसी परम्परा को ओग बढ़ाने वाले लेखकों में थे- पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन, श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', श्री

बालमुकुन्द गुप्त, श्रीनिवासदास, श्री राधाकृष्ण दास आदि। इन सभी लेखकों ने गद्य की निबन्ध, नाटक, उपन्यास, एकांकी आदि विधाओं पर लेखनी चलायी।

पं0 प्रताप नारायण मिश्र ने कालि कौतुक व रूकमणि परिणय, हठी हमीर और गौ संकट जैसे नाटकों का सृजन किया। इसके अतिरिक्त पेट, मुच्छ, दान, जुआ आदि विषयों पर निबन्ध लिखे। इसके अतिरिक्त ब्राहमण' पत्रिका का प्रकाशन कर हिन्दी गद्य विधा को आगे बढ़ाया। पंडित बालकृष्ण भट्ट इसी श्रखंला की दूसरी कड़ी थे, जिन्होंने सम्वत् 1934 में 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इन्होंने विभिन्न विषयों पर निबन्ध प्रकाशित किये। पंडित भट्ट ने पदमावती, शिशुपाल वध, चन्द्रसेन', जैसे नाटक सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रहमचारी, जैसे उपन्यास और आँख, नाक, कान जैसे विषयों पर ललित निबन्ध लिखे। पंडित बद्रीनारायण चौधरी ने इसी युग में, 'आनन्द कांदविनी, मासिक और 'नीरद' जैसे साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। भारत सौभाग्य' वीरांगना रहस्य जैसे नाटक लिखकर चौधरी जी ने हिन्दी गद्य विधा को एक नया रूप प्रदान किया। भारतेन्दु युग के जिन प्रतिष्ठित साहित्यकारों की रचनाओं की आज भी प्रशंसा की जाती है वे हैं, श्री बालमुकुद गुप्त , लाल श्रीनिवास दास, श्री राधाकृष्ण दास, श्री बालकुकुद गुप्त ने हिन्दी गद्य की निबन्ध विधा को अत्यधिक समृद्धि प्रदान की। इनकी शिवशम्भू के चिट्ठे प्रसिद्ध रचना है। लाल श्रीनिवास दास ने इसी अवधि में 'प्रह्लाद चरित्र, तप्ता संवरण, रणधीर प्रेम मोहनी, संयोगिता स्वयंवर जैसे नाटक और 'परीक्षा- गुरू जैसा उपन्यास लिखा। श्री राधाकृष्णदास इस युग के प्रसिद्ध नाटकार थे। जिन्होंने दुःखिनी बाला, 'महारानी पदमावती, महाराणा प्रताप' सतीप्रताप जैसे नाटक तो 'निस्सहाय हिन्दु' जैस उपन्यास की रचना की।

भारतेन्दु युग के इन रचनाकारों के साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इन्होंने हिन्दी गद्य के विकास के लिए नाटक, निबन्ध , उपन्यास, आदि सभी विधाओं में साहित्य की सर्जना की । राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण इन लेखकों ने मौलिक साहित्य के अतिरिक्त अनेक अनुवाद भी किये। भारतेन्दु युग में जहाँ हिन्दी गद्य साहित्य को एक नयी दिशा मिली। वहाँ भाषाई संस्कार भी मिला।

अभ्यास प्रश्न

(9) भारतेन्दु हरिशचन्द्र के पिता का नाम था-

1. पंडित प्रतापनारायण मिश्र
2. चौधरी ब्रदीनारायाण
3. श्री गोपाल चन्द्र
4. श्री राधा कृष्ण दास

(10) भारतेन्दु युग में निम्नलिखित विधा का विकास हुआ।

1. निबन्ध गद्य विधा का।
2. नाटक गद्य विधा का।
3. उपन्यास गद्य विधा का।

4. उपरोक्त समस्त गद्य विधाओं का।

(11) भारतेन्दु हरिचन्द्र ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए प्रकाशित की।

1. ब्राह्मण पत्रिका
2. कविवचन सुधा पत्रिका
3. हिन्दीप्रदीप पत्रिका
4. आनन्द कादंवनी

(12) नीचे दी गयी रचनाओं के समक्ष उनके लेखकों के नाम लिखिए।

1. नीलदेवी -
2. हठी हमीर -
3. शिशुपाल वध -
4. संयोगिता स्वयंवर -

1.7 द्विवेदी युग (सन् 1900-1920)

पूर्व में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि भारतेन्दु हरिचन्द्र जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक लेखकों ने हिन्दी गद्य को समृद्ध किया। इस मंडली ने हिन्दी साहित्य के अनेक अध्येता और हिन्दी गद्य विकास और प्रचार के लिए अनेक मौलिक और अनुदित ग्रन्थ तैयार किये। इतना सब कुछ होने पर भी इस युग के गद्य लेखकों की गद्य भाषा में कई त्रुटियाँ मिलती हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए जिस प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार ने अपनी लेखनी उठाई उन्हें साहित्य संसार पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जानता है। इन्होंने अपनी साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी भाषा का परिमार्जन किया।

हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा सन् 1900 से प्रारम्भ किया गया। इस पत्रिका ने सन् 1903 से सन् 1920 तक आचार्य महावीर द्विवेदी के सम्पादकत्व में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की उतनी अन्य सम्पादकों के सम्पादकत्व में नहीं। 'सरस्वती' पत्रिका ने उस समय राष्ट्रीय वाणी को दिशा देने के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश कर यह सिद्ध किया कि हिन्दी भाषा में भी कठिन से कठिन विषयों को प्रस्तुत करने की क्षमता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित इस पत्रिका ने हिन्दी को गद्य की सभी विधाओं से सम्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। तथा इसमें व्याप्त अनगढ़पन और अराजकता को समाप्त कर इसे एक सुन्दर और सुगढ़ भाषा में प्रस्तुत किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1861 तथा मृत्यु 1938 में हुई थी। ये एक कवि होने के साथ-साथ एक निबन्धकार और समालोचक भी थे। इनका एक और सबसे बड़ा कार्य यह था कि इन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए आने वाली रचनाओं की भाषा को सुधार कर उसे शुद्ध और एक रूप किया। आचार्य द्विवेदी की

इच्छा थी कि खड़ी बोली हिन्दी अपना मानक रूप ग्रहण करें क्योकि इसके बिना किसी महान साहित्य की रचना करना सम्भव नहीं।

द्विवेदी जी ने उस युग की राष्ट्रीय चेतना और नव जागरण की भावना को पूर्ण आत्मसात किया। उन्होंने साहित्य के मध्य युगीन आदर्शों का विरोध तथा रीतिकालीन भाव बोधों और कलारूपों को अस्वीकार किया। इन्होंने अपने युग के साहित्यकारों से साहित्य को समाज से जोड़ने के लिए निवेदन किया। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि किसी भी देश की उन्नति अगर देखनी हो तो उस देश के साहित्य को अवलोकन करना चाहिए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से प्रेमचन्द, मैथलीशरण गुप्त, माधव मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, नाथूराम शर्मा, शंकर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री पद्मसिंह शर्मा और अयोध्या सिंह उपाध्याय ''हरिऔध' के साहित्य को समाज तक पहुँचाया।

द्विवेदी ने गद्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य लिखा गया। इस युग में निबन्ध, नाटक , उपन्यास, कहानी, आलोचना जैसी गद्य विधाओं ने अपना स्वतन्त्र रूप, ग्रहण किया जिनके माध्यम से अनेक साहित्यकार और रचनाएँ प्रकाश में आयीं। इसी काल में कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द, नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, निबन्ध के क्षेत्र में बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, रामचन्द्र शुक्ल तथा आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक कार्य किये। इसके साथ ही इस काल में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण या यात्रा वृतान्त जैसी कई नयी गद्य विधाओं में भी लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ।

नाटक- हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिचन्द्र ने अनेक नाटक लिख कर किया। भारतेन्दु युग के प्रायः सभी लेखकों ने नाटक लिखे। इसी का प्रभाव द्विवेदी युग पर भी पड़ा और उस युग में भी कई नाटक लिखे गये। इस युग में अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के नाटक अनुदित होकर हिन्दी में आये। अनुदित नाटकों में बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गिरिश बाबू, विद्या विनोद, अंग्रजी नाटकार, शेक्सपियर, संस्कृत के नाटककार, कालिदास, भवभूति आदि नाटककारों के नाटकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाश में आये। मौलिक नाट्य लेखन में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी- चौपट चेपट, और मयंक मंजरी, अयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध'- रूक्मणी परिणय और प्रधुम्न विजय बाबू शिवनन्दन सहाय सुदमा नाटक, जैसे नाटक लिखे गये, ये सभी सामान्य नाटक थे जिनपर फारसी थियेटर का प्रभाव पड़ा, लेकिन साहित्यक दृष्टि से ये उच्चकोटि के नाटक नहीं थे। नाटाकों के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने उच्च कोटि का कार्य किया जो कि उच्चकोटि की साहित्यकता से ओत प्रोत हैं।

उपन्यास- उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य कहलाता है। हिन्दी में जैसे ही गद्य का विकास हुआ, उपन्यास विधा भी अस्तित्व में आयी। भारतेन्दु युग से पूर्व श्रृद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' उपन्यास लिखकर हिन्दी में उपन्यास विधा का प्रारम्भ किया। इसके बाद भारतेन्दु युग में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरू' उपन्यास की रचना की। भारतेन्दु युग में श्री राधाकृष्ण दास का 'निःसहाय हिन्दु' पंडित बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (सन् 1892) श्री लज्जाराम शर्मा का 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (सन् 1899) और धूर्त रसिकलाल, (सन् 1907) जैसे उपन्यास काफी लोकप्रिय हुए। द्विवेदी युग के उपन्यास कारों में सबसे समादृत श्री देवकीनन्दन खत्री हैं। जिन्होंने 'चन्द्रकान्ता' और चन्द्रकान्ता सन्नति' जैसे ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों के माध्यम से जिस गद्य भाषा का प्रयोग किया, वह उर्दू हिन्दी

मिश्रित भाषा है। द्विवेदी युग में पंडित किशोरी लाल गोस्वामी ने करीब छोटे-छोटे 65 उपन्यास लिखे। साथ ही इन्होंने 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला। इनके उपन्यासों में 'चपला' 'तारा' तरूण, तपस्विनी, रजिया वेग़म, लीलावती, लवंगलता आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। इसी युग में 'हरिऔध' जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', और अधखिला फूल, लज्जाराम मेहता ने हिन्दु धर्म, आदर्श दम्पत्ति, बिगड़े का सुधार,आदि उपन्यास लिखे।

कहानी- वैसे तो भारत में कहानी 'कथा' के रूप में आदिकाल से ही चली आ रही थी। किन्तु जिसे वर्तमान की कहानी कहा जाता है। उसका यह स्वरूप काफी नहीं है। वैसे तो समीक्षक मुंशी इंशा अल्ला खाँ की लिखी ''रानी केतकी की कहानी'' को हिन्दी की प्रथम कहानी के पद पर विभूषित करते हैं लेकिन इसमें वर्तमान की कहानी के स्वरूप का अभाव है। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' की रचना की, लेकिन ये सभी कहानी लेखन के छोटे प्रयास थे। हिन्दी कहानी की रचना का प्रारम्भ बीसवीं शदी के प्रथम दशक में हुआ। जबकि हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद ने कहानी लिखना प्रारम्भ किया। सन् 1911 में प्रसाद जी की ग्राम कहानी प्रकाशित हुई तो सन् 1915 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी ''उसने कहा था'' का प्रकाशन हुआ। सन 1915-16 से पूर्व मुंशी प्रेमचन्द ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखी। इस तरह द्विवेदी युग में जिन कहानीकारों ने कहानियाँ लिख उनमें श्री विश्म्भर नाथ शर्मा, कौशिक, श्री सुदर्शन, श्री राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री जी.पी0 श्रीवास्तव, आचार्य चतुरसेन, आदि कहानीकार मुख्य हैं।

निबन्ध और समालोचना- निबन्ध और समालोचना हिन्दी गद्य की अभिन्न गद्य विधाएँ हैं। जिनका विकास भारतेन्दु युग से होने लगा था। भारतेन्दु युग के निबन्धों में जहाँ राष्ट्र और समाज के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी, वहाँ इनमें तीखा व्यंग्य और विनोद भी दिखाई दिया। द्विवेदी युग के निबन्धकारों में श्री बालमुकुन्द गुप्त ने इसी शैली को अपनाकर अपने निबन्धों को चर्चित किया। इनकी प्रसिद्ध रचना ''शिवशम्भू का चिट्ठा'' इसी शैली के निबन्धों से ओत प्रोत कृति है। इनके अतिरिक्त, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित माधव मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, बाबू श्याम सुन्दरदास, पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाब राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्विवेदी युग के ही निबन्धकार हैं। जिनकी निबन्ध भाषा और परिमार्जित है।

द्विवेदी युग में ही समालोचना का आरम्भ हुआ। वैसे इसका सूत्रपात भारतेन्दु काल में हो चुका था। इसकी सूचना इमें 'आनन्द कादंबिनी' से मिलती है। जिसमें कि लाला श्रीनिवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद आलोचना प्रकाशित हुई थी। किन्तु समालोचना का वास्तविक प्रारम्भ द्विवेदी युग से हुआ। इसी युग में आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित कई लेख प्रकाशित हुए। वैसे भारत में समीक्षा की काई परम्परा नहीं थी यहाँ के विद्वान समीक्षा के नाम पर किसी भी कृति के गुण दोषों पर ही प्रकाश डालते थे लकिन द्विवेदी युग में ही इसका आरम्भ हुआ। इस युग की प्रथम समीक्षा कृति महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कालिदास की निरंकुशता' थी। जिसमें उन्होंने लाल सीताराम बी0ए0 के अनुवाद किये नाटकों के भाषा तथा भाव सम्बन्धी दोष बड़े विस्तार से प्रदर्शित किये। इस युग में आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य लेखकों ने समीक्षा साहित्य को गतिप्रदान की उनमें मिश्र बन्धु, बाबू श्याम सुन्दर दास, पदम सिंह शर्मा, डॉ0 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, श्री कृष्ण विहारी मिश्र, बाबू गुलाब राय

जैसे समीक्षक है। लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में जो युगांतकारी कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया उसे द्विवेदी युगीन कोई दूसरा समीक्षक नहीं कर सका।

अभ्यास प्रश्न

(13) हिन्दी भाषा और साहित्य को नई दिशा देने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे।

1. बाबू गुलाबराय
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
4. बाबू श्याम सुन्दरदास

(14) द्विवेदी जी के साहित्य में निम्नलिखित चार प्रवृत्तियों में से एक सही नहीं है।

1. पद्य और गद्य की भाषागत एकता
2. राष्ट्रीय भावना और नवजागरण को प्रोत्साहन
3. रीतिकालीन भावबोध का समर्थन
4. समाज के अनुकूल साहित्य रचने की प्रेरणा

(15) नीचे कुछ रचनाओं के नाम दिये गये हैं। इनके रचना कारों के नाम लिखिये।

1. ठेठ हिन्दी का ठाठ
2. ग्राम
3. तरूण तपस्विनी
4. प्रेमा

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के निबन्धों की दो भिन्नताएँ बताइए।
4. द्विवेदी युग के संन्दर्भ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका का विवेचन चार पंक्तियों में कीजिये।

1.8 प्रेमचन्द और उनके पश्चात्

द्विवेदी के पश्चात् जिन साहित्यकारों ने गद्य साहित्य को नयी दिशा प्रदान की, मुंशी प्रेमचन्द भी उनमें से एक हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने यद्यपि लेखन का कार्य द्विवेदी युग से ही आरम्भ कर लिया था लेकिन इनकी रचनाओं में एक नवीनता के दर्शन होते हैं। इसीलिए इनकी उपन्यास और कहानी विधाओं से एक नये युग का प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द ने इस युग में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध और जीवनियाँ लिखी। इनकी इन सभी विधाओं में समाज और दशा

की वास्तविक स्थिति के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द ने अपने जीवन में लगभग 300 कहानियों की रचना की। इनकी ये सभी कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में संकालित हैं। इनमें से ईदगाह, कफन, शंतरंज के खिलाड़ी, पंचपरमेश्वर, अलग्योझा, बड़े घर की बेटी, पूस की रात', नमक का दरोगा, ठाकुर का कुआँ, श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट कहलाते हैं। इस विधा में इन्होंने देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। इनके रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवासदन, गबन जैसे उपन्यास देश की इन्ही समस्याओं को उजागर करते हैं। प्रेमचन्द के इस युग में उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में जिन साहित्यकारों का योगदान रहा है उनमें जयशंकर प्रसाद, आचार्य चतुरसेन, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, बेचेन पाण्डेय, इलाचन्द्र जोशी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैनेन्द्र अज्ञेय, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर मुख्य हैं। इसी तरह प्रेमचन्द के समकालीन जिन कहानीकारों ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की, उनमें उपरोक्त उपन्यासकारों के साथ-साथ अमृराय, मन्मथनाथ,गुप्त, रांगेय राघव, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोवती का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

प्रेमचन्द युग के नाटकों में जयशंकर प्रसाद के नाटय आदर्शवादी नाटक हैं,। इसलिए जयशंकर प्रसाद को इस युग का युग प्रवर्तक नाटककार माना जाता है। इनके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति की झलक सर्वत्र दिखायी देती है। कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्र गुप्त और ध्रुवस्वामिनी इनके बड़े और महत्व वाले नाटक हैं। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त इस युग के अन्य नाटककारों में प्रमुख हैं श्री जगदीश चन्द्र माथुर- कोणार्क, पहला राजा, शारदीय, मोहन राकेश- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे अधूरे, इनके अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविन्द बल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, जगन्नाथ दास मिलिन्द, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, ब्रजमोहन शाह, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, इन्द्रजीत भाटिया भी उच्चकोटि के नाटकार हैं।

प्रेमचन्द युग में नाटकों के अतिरिक्त एकांकी भी लिखे गये। जिन्हें उपरोक्त नाटकारों के अतिरिक्त कुछ एकांकीकारों में डॉ0 रामकुमार वर्मा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी राई, कौमुदी महोत्सव, राजरानी सीता इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। प्रेमचन्द के युग में नाटक, उपन्यास, काहनी, एकांकी, के अतिरिक्त निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण आदि गद्य विधाओं की भी पर्याप्त प्रगति हुई। इस युग के निबन्धकारों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, बाबू गुलाब राय, वासुदेव शरण अग्रवाल सदगुरूशरण अवस्थी, शांतिप्रिय द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, कुवेरनाथ राय, विष्णुकान्त शास्त्री, आदि निबन्धकार मुख्य हैं। प्रेमचन्द जी के युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिस समालोचना साहित्य का श्री गणेश किया उसी को आगे बढाने में आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ0 नगेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ0 देशराज, डॉ0 राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवरसिंह, डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रेमचन्द और उनके बाद के साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के साहित्य पर युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा। इस काला की रचनाओं में जहाँ लेखकों ने सामाजिक समस्याओं पर अपनी गहरी दृष्टि डाली वहाँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी साहित्य में स्थान दिया। इस युग के गद्य साहित्य में देश की राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव भी पड़ा। यही नहीं अन्तराष्ट्रीय परिवर्तनों के प्रभाव से भी इस काल का साहित्य प्रभावित रहा। सन् 1947 में जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और रूस में समाजवाद का उद्भव व उदय हुआ तो इस काल के गद्य साहित्य में प्रगतिवाद ने प्रवेश किया। इस काल के साहित्य पर पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति का भी प्रभाव पड़ा । इसी के फलस्वरूप गद्य की नयी-नयी विधाओं ने जन्म लिया। यात्रावृत्त, जीवनी, डायरी, आत्मकथा, रिपार्ताज जैसी नवीन गद्य विधाएँ इसी के परिणाम हैं।

अभ्यास प्रश्न

(16) निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कीजिये।

1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध ..... है।
2. 'आषाढ़ का एक दिन' के लेखक हैं.....।
3. 'पृथ्वीराज की आँखें'..... का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) प्रेमचन्द और उनके बाद के किन्ही चार उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

(18) हिन्दी निबन्ध के किन्ही तीन निबन्धकारों के नाम लिखिए।

1.9 सारांश

हिन्दी गद्य विकास की इस इकाई में आपने इन तथ्यों का अध्ययन किया।

- गद्य और पद्य का अन्तर
- हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि
- हिन्दी गद्य का विकास
- अंग्रेजी की भाषा नीति
- भारतेन्दु युगीन गद्य

1.10 शब्दावली

सोद्देश्य- उद्देश्य के साथ
प्राणयण- तन-मन से
शून्यता - खालीपन

परिणाम-	फलतः
उपदेशात्मकता-	उपेदश देने की वृत्ति
सृजान-	निर्माण
व्यक्त-	प्रकट
श्रृंखला-	कड़ी, जंजीर, पंक्ति वद्धता
साम्राज्य-	शासन
ओत प्रोत-	परिपूर्ण

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. कविता में गेयता होती थी (सत्य)
2. (सत्य)
3. (असत्य)
4. (सत्य)

(2) (3) विक्रमी सम्वत् 1660

(3)
1. श्रृंगार मण्डल - गोसाई विट्ठलनाथ
2. चौरासी बैष्णव की वार्ता - गोकुलनाथ
3. सब रस - मुल्ला वजही
4. चंद छन्द बरनन की महिमा - गंग कवि

(4) 4. उपरोक्त सभी

(5) 3. स्वामी दयानन्द ने।

(6) 3. उदन्त मार्तण्ड

(7) 3. राजा लक्ष्मण सिंह

(8) 1. हाँ 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं

(9) 3.

(10) 4.

(11) 2.

(12)
1. नील देवी- भारतेन्दु हरिशचन्द्र
2. हठी हमीर- पंडित बालकृष्ण भट्ट
3. शिशुपाल वध- पंडित श्री निवासदास
4. संयोगिता स्वयंवर- लाला श्री निवास दास

(13) 3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

(14) 3. रीतिकालीन भाव बोध का समर्थन

(15) 1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
2. जयशंकर प्रसाद
3. पंडित किशोरी लाल गोस्वामी
4. मुंशी प्रेमचन्द

(16) 1. गोदान प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास है।
2. आषाढ़ का एक दिन के लेखक हैं- मोहन राकेश।
3. पृथ्वीराज की आँखें डॉ0 राम कुमार वर्मा का प्रसिद्ध एकांकी है।

(17) 1. जयशंकर प्रसाद
2. आचार्य चतुरसेन।
3. गुरूदत्त
4. यशपाल

(18) 1, डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

2, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3, पंडित बालकृष्ण भट्ट

1.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुगम इतिहास।
3. मिश्र, लल्लूलाल, प्रेम सागर।

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी गद्य के उदय की पृष्ठभूमि विवेचित कीजिए।
2. द्विवेदी युगीन गद्य की विशेषताएँ वर्णित कीजिए।

इकाई –2 हिन्दी कहानी का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिन्दी कहानी का उद्भव
2.4 हिन्दी कहानी का विकास
  2.4.1 प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी
  2.4.2 प्रेमचन्द युग की कहानी
  2.4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस हिन्दी कहानी के पूर्व भी भारत वर्ष में कहानी का अस्तित्व था, लेकिन अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् हिन्दी कहानी जिस रूप में आयी इसका यहाँ पर विस्तृत विवेचन किया गया है। यह विधा वर्तमान में पूर्ण रूप से गद्य की विधा है। जो समय-समय पर अनेक विचारों वादों और साहित्य आन्दोलनों से प्रभावित होती रही। इसकी इसी विकास यात्रा पर हम इस इकाई में गहनता से विचार करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- हिन्दी गद्य की कहानी के विषय में जान सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के उद्भव की कथा को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास को जान सकेंगे।
- प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी और कहानीकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द के युग की कहानी और कहानीकारों के विषय में पूर्व जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे ।
- प्रेमचन्द युग पश्चात की कहानी और कहानी की युग धारा को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कहानी के विभिन्न कहानीकारों के विषय में जान सकेंगे ।
- हिन्दी भाषा साहित्य की विभिन्न कहानियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.3 हिन्दी काहानी का उद्भव

कहानी शब्द हमारे लिए अपरचित शब्द नहीं है, क्योंकि बचपन में हम जिसे कथा कहते थे, कहानी उसी कथा का साहित्यिक रूप है। इस कहानी को हमने कभी दादी-नानी के मुख से लोक कथा के रूप में सुना तो कभी पण्डित जी के मुख से धार्मिक कथा के रूप में, ये सभी राजा रानी की कहानियाँ, पशु पक्षियों की कहानियाँ, देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ, चमत्कारों और जादूटोनों की कहानियाँ, भूत प्रेतों की कहानियाँ, मूर्ख और बुद्धिमानों की

कहानियाँ वर्तमान की कहानियाँ कर पुरातन स्वरूप थीं, जिन्हें लोग बड़े चाव से सुनते और सुनाते थे। इनके अतिरिक्त, पुराण, रामायण, महाभारत, पन्चतंत्र, बेताल पच्चीसी, जातक कथाएँ आदि कई प्राचीन ग्रन्थ इन कहानियों का आदि स्रोत रहे हैं। इन कहानियों को पढ़ने-सुनने से जहाँ जन सामान्य से लेकर विद्वानों का मनोरंजन होता था, वहाँ इनके माध्यम से अनके शिक्षाएँ तथा उद्धेश्य प्राप्त होते थे। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इन्हें एक ही साथ कई घंटों और दिनों तक सुना जा सकता है। जिन्हें बार-बार सुनने पर नीरसता की अपेक्षा और अधिक सरसता प्राप्त होती है। ये सभी कहानियाँ हमें परम्परा से प्राप्त हुई, इनमें अतिसंख्य कहानियाँ कल्पना पर आधारित होती हैं, लेकिन कहीं-कहीं इन कहानियों में ऐतिहासिक तथ्यों को भी उजागर किया जाता है। ये ही कहानियाँ वर्तमान कहानी का प्राचीन स्वरूप है।

प्राचीन कहानियाँ घटना प्रधान होती थी, जिस घटना के माध्यम से लेखक या वक्ता अपने उद्धेश्य की पूर्ति करते थे। इसके लिए वे कहानियों की घटनाओं को मनोइच्छित रूप देते थे। कहानी की रचना के लिए वे काल्पनिक, दैवीय, और चमत्कारी घटनाओं का आविष्कार करते थे। लेकिन वर्तमान की कहानी पुरातन कहानी से एकदम भिन्न है। क्योंकि आज का कहानीकार कहानी की घटना को मानव के यथार्थ जीवन से जोड़ता है, कहानी लिखते एमय कहानीकार यह ध्यान रखता है कि जिस कहानी की वह रचना कर रहा है वह अस्वाभाविक न लगे। जिस चरित्र को वह प्रस्तुत कर रहा है, वह समाज के अन्दर क्रियाशील मानव की भाँति ही प्रतीत हो। वह उसके द्वारा ऐसे कार्य नहीं करा सकता जो मुनष्य के लिए असम्भव हो। पुरातन कहानियों के चरित्र ऐसे होते हैं जो असम्भव कार्य को कर देते है। लेकिन वर्तमान की कहानियाँ के पात्र अपने समय और परिस्थितियों के अनुकूल क्रियाशील होते हैं। आज समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा है, इसीलिए इसी साहित्य के गद्य रूप कहानी में भी काफी बदलाव आ रहे हैं। वर्तमान की हिन्दी कहानी का उद्भव 18 वीं सदी से लेकर 19 वीं शदी के मध्य में हुआ। कुछ विद्वान हिन्दी कहानी के प्रारम्भ के अन्तर्सूत्र भारत की प्राचीन कथा परम्परा से जोड़ते है तो कुछ कहानी विधा को पाश्चात्य साहित्य की देन मानते हैं। कुछ साहित्यधर्मी हिन्दी कहानी का उद्भव स्रोत्र गुणाढ्य की वृहद कथा, कथा सरित सागर, पंचतंत्र कथाएँ, हिंतोपदेश जातक कथाओं से जोड़ते हैं तो कुछ विद्वान स्वामी गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवन की वार्ता को हिन्दी का प्रथम कहानी संग्रह मानते हैं, लेकिन ये कहानियाँ नही जीवनियाँ मात्र हैं।

2.4 हिन्दी कहानी का विकास

जैसा कि विद्वान स्वीकारते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी में कहानी का आरम्भ उस समय हुआ जब अंग्रेजों के प्रभाव से गद्य लिखा गया। अंग्रेजों ने हिन्दी गद्य के विकास के लिय जिन लेखकों को तैयार किया उनकी आरम्भिक रचनाएँ एक तरह की कहानियाँ हैं। इन गद्य लेखकों में इंशा अल्ला खाँ एक ऐसे गद्यकार थे जिन्होंने ‘‘रानी केतकी कहानी’’ जैस कहानी का सृजन किया लेकिन वर्तमान के समालोचक इसे आधुनिक हिन्दी कहानी के स्वरूप और कथ्य से भिन्न मानते हैं। वर्तमान में कहानी के लिए जिन तत्वों को निर्धारित किया गया है, रानी केतकी की कहानी में वे सभी तत्व नहीं मिलते। वर्तमान की कहानी लेखन की प्रेरणा पूर्व में अंग्रेजी और बंगला में रची गयी और हिन्दी में

अनुदित कहानियों से मिली, क्योंकि 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच आदि भाषाओं में कहानी का अच्छा विकास हो चुका था।

'नासिकेतो पाख्यान' तथा 'रानी केतकी' की कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी न मानने के पीछे उसमें कहानी तत्वों का अभाव है। इसके पश्चात् भारतेन्दु की 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' प्रकाश में आयी लेकिन विद्वानों ने इनमें भी कहानी कला के तत्वों के अभाव के दर्शन किये। वैसे हिन्दी कहानी का प्रारम्भ सन् 1900 में प्रकाशित होने वाली उस 'सरस्वती' पत्रिका से हुआ जिससे पंडित किशोरी लाल गोस्वामी को 'इन्दुमती' (1900ई0) को प्रकाशन हुआ था। हिन्दी कहानी के इस विकास पर गहरी दृष्टि डालने के लिए हमें हिन्दी कहानी के महान कहानी कार प्रेमचन्द को केन्द्र में ररखकर चर्चा करनी होगी।

अभ्यास प्रश्न

(1) हिन्दी की प्राचीन कहानियाँ हैं- एक पर सही का चिहन लगायें-

1. राजा-रानी की कहानियाँ ( )
2. देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ ( )
3. पशुपक्षियों की कहानियाँ ( )
4. उपरोक्त सभी की कहानियाँ ( )

(2) प्राचीन कहानियाँ-

1. यथार्थवादी कहानियाँ हैं,
2. वैज्ञानिक कहानियाँ हैं,
3. काल्पनिक कहानियाँ हैं,
4. कहानी तत्वों के आधार पर लिखी कहानियाँ हैं,

(3) हिन्दी की प्रथम कहानी है-

1. नासिकेतोपाख्यान
2. रानी केतकी की कहानी
3. इन्दुमती
4. अद्भुत अपूर्व स्वप्न

(4) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1. 'चौरासी बैष्णवन की वार्ता,..... की रचना हैं
2. वर्तमान कहानी लेखन की प्रेरणा पूर्व में ..... कहानियाँ से मिली।

हिन्दी कहानी के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उपन्यास सम्राट मुशी प्रेमचन्द ने निभायी। इस युग पुरूष ने अपनी कहानियों को विविध शैलियों के माध्यम से साहित्य संसार को सौंपा, इसलिए कहानी साहित्य संसार शिरोमणियों ने हिन्दी कहानी परम्परा में प्रेमचन्द का स्थान केन्द्रीय महत्व का स्वीकारा। मुशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में तीन सौ कहानियाँ लिखी, इन्होंने हिन्दी कहानी को वह श्रेष्ठता प्रदान की जिससे प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी के अन्य कहानिकारों ने हिन्दी कहानी कोष की श्रीवृद्धि की, इसलिए हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर हम तीन चरणों में बाँटते हैं -

1. प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी - सन् 1901 से 1914 ई0

2. प्रेमचन्द युग की कहानी (सन् 1914 से सन् 1936 ई0)

3. प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी (सन् 1936 से वर्तमान तक) प्रवृत्तियों की दृष्टि से इन चरणों को कई धाराओं में विभाजित किया जाता है जिनका विवेचन हम यहाँ निम्न प्रकार से करते हैं।

2.4.1 प्रेमचन्द युग से पूर्व की कहानी (सन् 1901 से सन् 1914 ई0)

जैसा कि विद्वान प्रेमचन्द पूर्व युग कहानी का समय सन् 1901 सन् 1914 तक मानते हैं। हिन्दी की प्रथम कहानी कौन है ? इस विषय में काफी विवाद हैं। हिन्दी गद्य की प्रारम्भिक आवधि में मुंशी इंशा अल्ला खाँ ने 'उदय भान चरित्र' या रानी केतकी की कहानी की रचना की थी। समय की दृष्टि से यह सबसे पुरानी कहलाती हैं परन्तु आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना नही है।

आचार्य हजारी प्रसार द्विवेदी का विचार है कि- "यह मुस्लिम (फारसी) प्रभाव की अन्तिम कहानी है यद्यपि इसकी भाषा और शैली में आधुनिक कहानी कला का आभास मिल जाता है।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की कहानी 'राजाभोज का सपना' भी ऐसी ही कहानी है, इसमें भी थोड़ा बहुत आधुनिकता का स्पर्श मिलता है। इन कहानियों के अतिरिक्त किशोरी लाल गोस्वामी की इन्दुमती, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ' ग्यारह वर्ष का समय' बग महिला की 'दुलाई वाली' आदि कहानियाँ इसी कोटि की कहानियाँ हैं। इन कहानियों को हम प्रयोगशील कहानियाँ कह सकते हैं। जिनमें कहानी लेखकों ने विदेशी और बंगला कहानियों के प्रभाव में आकर हिन्दी भाषा में भी कहानी लिखने का भी प्रयास किया। कहानी कला को केन्द्र में रखकर वर्तमान के समालोचक अब माधव राव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं जिसका प्रकाशन सन् 1903 में हुआ था।

प्रेमचन्द युग से पूर्व की कहानियों की विशेषताऐं-

1. प्रेमचन्द पूर्व युग की आरम्भिक कहानियाँ पुरान स्वरूप की थी। जिनका कथानक अलौकिक चमत्कारो से युक्त होता था।
2. प्रेमचन्द पूर्व युग की आरम्भिक कहानियाँ प्रायः आदर्श-वादी होती थी जिनमें भावुकता के साथ किसी भारतीय आदर्श की कथा कही जाती थी।

3. प्रेमचन्द युग की कहानियाँ धीरे-धीरे यथाथ्र की और उन्मुख हुई, लेकिन इस यथार्थ का रूप ऐसा नहीं था जैसा कि प्रेमचन्द की कहानियों में मिलता है।
4. भाषा की दृष्टि से इस युग की कहानियों की भाषा उतनी प्रौढ़ और परिमार्जित भाषा नहीं है जितनी प्रेमचन्द की कहानियों में है।
5. इस युग के कहानीकार प्रयोगधर्मी कहानी कार अधिक थे, इसलिए उस युग की कहानी प्रयोगधर्मी कहानियाँ अधिक है।

2.4.2 प्रेमचन्द युग की कहानी (सन् 1915 से 1936 तक)

हिन्दी कहानी का प्रेमचन्द युग का आरम्भ सन् 1915 ई0 से माना जाता है। मुशी प्रेमचन्द जिस अवधि में कहानियाँ लिख रहे थे उसी अवधि में कई कहानीकारों ने इस विधा को आगे बढ़ाने के लिए अपनी लेखनियाँ उठायी। जिनमें जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन आदि मुख्य कहानीकार हैं। इसी युग में जिन अन्य कहानीकारों ने हिन्दी कहानी विधा को नई दिशा प्रदान की उनमें श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा, 'कौशिक', आचार्य चतुर सेन शास्त्री, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री शिव पूजन सहाय, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्री गोपाल राम गहमरी, श्री रायकृष्ण दास, पदुम लाल पुन्नालाल वख्शी, रमाप्रसाद धिल्डियाल पहाड़ी पंडित ज्वाला प्रसाद शर्मा, श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव आदि का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अनके पत्र-पत्रिकाओं में इन कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुई; जिससे हिन्दी कहानी के लेखक ही नहीं पाठकों की संख्या में भी वृद्धि हुई, इस युग के जिन मुख्य कहानीकारों की साहित्य सेवा का आंकलन करने के लिए साहित्य के इतिहासकारों ने इन्हें विशेष रूप से सम्मान दिया वे इस प्रकार हैं-

पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी - हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकारों में प्रेमचन्द युगीन कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को का नाम भी बड़े समादर से लिया जाता है। यदि आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से किसी कहानी को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा जाय तो वह है – **उसने कहा था**: यह कहानी यथार्थवादी कहानी है जो एक आदर्श को प्रस्तुत करती है। गुलेरी जी ने इसके अतिरिक्त सुखमय जीवन और बुद्धु का कांटा दो कहानियाँ और लिखी।

जयशंकर प्रसाद- प्रेमचन्द युम में ही जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी में कई कहानियाँ लिखी लेकिन इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द की कहानी शैली से बिल्कुल भिन्न कहानियाँ हैं। एक राष्ट्रवादी साहित्यकार होने के कारण इनकी कहानियों में राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसाद जी ने आधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, जिनकी भाषा संस्कृत निष्ठ, भाव प्रधान, अलंकारिक और काव्यात्मक है। यही नहीं इनकी कहानियों में नाट्य शैली के भी दर्शन होते हैं, इनकी कहानियों में आकाश दीप, पुरस्कार, ममता, इन्द्रजाल, छाया, आँधी, दासी जैसी कहानियाँ आदर्शवादी कहानियाँ हैं तो मधुवा, और गुंडा जैसी कहानियाँ यथार्थवादी कहानी।

मुंशी प्रेमचन्द- मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी कहानी संसार के लिए वरदान बनकर आये, इनकी हिन्दी की पहली कहानी पंच परमेश्वर सन् 1915 में प्रकाशित हुई। 'पंच परमेश्वर' प्रेमचन्द जी की एक आदर्शवादी कहानी है जिसमें मनुष्य के अन्दर छिपे दैवत्व के गुणों को उजागार किया गया है। लेकिन इनकी बाद की कहानी यथार्थवादी कहानियाँ हैं जिनमें ग्रामीण और शहरी पददलितों के जीवन में घटने वाली घटनाओं को कहानियों के माध्यम से सार्वजनिक किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं -

प्रेमचन्द, शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जवरदस्त वकील थे। गरीबों और बेबसों के महत्व के प्रचारक थे। (हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास पृष्ठ- 266)

प्रेमचन्द ने अपने युग की सामाजिक बुरी दशा को अपने उपन्यास तथा कहानियों का विषय बनाया। अपने इस कथा साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने स्पष्ट किया था कि हमारे सामाजिक कष्टाकें के दो ही कारण हैं- एक धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ीवादिता और दूसरा आर्थिक शोषण और राजनीतिक पराधीनता, इनका सारा कथा साहित्य इसी पर केन्द्रीत है। इनकी आरम्भिक कहानियाँ आर्दशवादी कहानियाँ हैं लेकिन धीरे-धीरे इन्होंने यथार्थ से नाता जोड़ा । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के पात्र गरीब, बेबस और दबे-कुचले लोगों को बनाया। इन सबके अन्दर गुप्त मानवतावाद को एक नया प्रकाश दिया, प्रेमचन्द ने जहाँ अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ीवाद और कुरीतियाँ के दमन के उपाय सुझाए वहाँ राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोही आवाज उठायी। प्रेमचन्द की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ इनके इसी भावों को प्रदर्शित करती है।

इनमें मुख्य हैं- 'कफन', पूस की रात, शतरंज के खिलाड़ी, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, बड़े भाई साहब, सवा सेर गेहूँ, अलाग्योझा, नमक का दरोगा, पंचपरमेश्वर, ईदगाह, बूढ़ी काकी, ईदगाह आदि। इनमें से कुछ यथार्थवादी कहानियाँ हैं तो कुछ आदर्शवादी कहानियाँ।

भाषा की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द की भाषा तत्कालीन समाज की बोल चाल की भाषा हैं। जिसे हम लोक भाषा का अनुपम उदाहरण कह सकते हैं। हिन्दी उर्दू शब्दों की यह मिश्रित भाषा वर्तमान में भी उतनी ग्राह्य और भाव बोधक है जितनी इनके लिखने समय में थी।

विश्वम्भर नाथ शर्मा- प्रेमचन्द के समान ही विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियाँ में आदर्श और यथार्थ का समन्वय दिखाई देता है। इनकी कहानियाँ भी घटना प्रधान और वर्णात्मक है। ताई, 'रक्षावधन', 'माता का हृदय', कृतज्ञता आदि कहानियों में जहाँ मानवीय भावों की सक्ष्म व्यंजना हुई है। वहाँ आदर्श के नये रूप के दर्शन होते हैं। श्री काशिक ने अपने जीवनकाल में तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं, 'मणिमाला', 'चित्रशाला', कल्लौल, कला-मन्दिर, इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।

श्री सुदर्शन- प्रेमचन्द युगीन कहानिकारों में श्री सुदर्शन का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होंने भी प्रेमचन्द की भाँति अनेक घटना प्रधान कहानियाँ लिखी, इनकी इन कहानियों के पात्र सामान्य कोटि के मजदूर, किसान आदि पात्र हैं जिनका सम्बन्ध ग्रामों और नगरों के सामान्य मध्यमवर्ती मोहल्लों से है। इनकी अनेक कहानियाँ मानवीय संवदनाओं की मार्मिक आर्मव्यक्ति देती है। इनकी कई लोक प्रिय कहानियाँ हैं- जिनमें 'हार की जीत', सलबम, आशीर्वाद, न्याय मंत्री, एथेन्स का सत्यार्थी , कवि का प्रार्याश्चित, आदि लोकप्रिय कहानियाँ हैं। इनके सभी कहानियाँ पनघट, सुदर्शन सुधा, तीर्थ यात्रा आदि कहानी-संग्रहों में संग्रहित है।

बाबू गलाब राय के शब्दों में - प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन, हिन्दी- कहानी साहित्य के प्रेमचन्द स्कूल के वृहद्त्रयी कहलाते हैं- (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-बाबू गुलाब राय- पृष्ठ- 157)

प्रेमचन्द के कथा शिल्प और कथ्य को लेकर कहानी लिखने वालों में- वृन्दावनलाल शर्मा- (शरणागत कटा-फटा झंडा, कलाकार का दण्ड जैनावदी वेगम, शेरशाह का न्याय, आदि) आचार्य चतुरसेन की दुखिया में कासे कहू सजनी, सफेद कौआ, सिंहगढ़ विजय, आदि। गोविन्द बल्लभ पंत सियाराम शरण गुप्त (बैल की बिक्री) भगवती प्रसाद वाजपेयी, मिठाई वाला, निंदियालागी, खाल, वोतल, मैना, ट्रेन पर, हार जीत आदि) रामवृक्ष बेनीपुरी, उषादेवी मित्रा आदि अनेक कहानीकारों की रचनाएं बहुत प्रसिद्ध हुई

प्रेमचन्द युगीन कहानियों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- ये परिमार्जित भाखा वाली कहानियाँ हैं।
- ये आदर्श और यथार्थ वादी कहानियाँ हैं।
- ये मानवीय सम्बन्धों का उद्घाटन करने वाली कहानियाँ हैं।
- ये ग्राम्यजीवन पर प्रकाश डालने वाली कहानियाँ हैं।
- ये राष्ट्रवादी और देश प्रेम से ओतप्रोत कहानियाँ हैं।
- ये राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण में विरूद्ध आवाज उठाने वाली कहानियाँ हैं।
- ये समाज में व्याप्त रूढ़ीवादी, कुरीतियों और अशिक्षा को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं।

2.4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी -

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी का विकास और तीव्रता से हुआ। प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के पश्चात् नये युग में हिन्दी कहानी की दो प्रमुख शाखाएँ उभरकर आयी। इनमें एक शाखा का सम्बन्ध प्रेमचन्द के यथार्थवादी परम्परा से था, ओर दूसरी शाखा का सम्बन्ध 'जयशंकर प्रसाद की भाववादी मनोवैज्ञानिक परम्परा से। इसलिए इन्हें इतिहासकारों ने प्रगतिवादी और मनोवैज्ञानिक कहानियों का नाम दिया,

प्रगतिवादी कहानी- हिन्दी की प्रगतिवादी कहानी को यथार्थवादी और समाजिक कहानी भी कहा जाता है। सन् 1936 में जब प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई इसके पश्चात् अनेक कहानी लेखक इससे जुड़े जिन्होंने अनेक यथार्थवादी कहानियाँ लिखी। साहित्य समीक्षकों ने इन्हीं कहानियों को प्रगतिशील कहानियों का नाम दिया, इन कहानिकारों में यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामप्रसाद थिल्डियाल पहाडी़, पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, आदि कहानीकार मुख्य हैं। इन सभी कहानीकारों ने प्रेमचन्द की तरह ही धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक शोषण तथा राजनैतिक पराधीनता ने निर्धन वर्ग को अपनी कहानियों का विषय बनाया। इन कहानीकारों ने निर्धन वर्ग को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा, इनकी कहानियाँ कहानी तत्वों की कसौटी पर खरी उतरती है। इन कहानियों के शीर्षक, कथानक, कथोपकथन, चरित्र चित्रण, पात्र, उद्धेश्य, देशकाल-वातावरण तथा भाषा शैली जैसे कहानी तत्व इन्हें कहानियों में जब कभी पात्रों का चरित्र चित्रण करते हैं तो इनकी दृष्टि व्यक्ति के अन्तर्मन के बजाय उसके सामाजिक व्यवहार पर अधिक स्थिर होती है। इन कहानियों के मुख्य कहानीकारों की रचनाएँ इस प्रकार हैं -

यशपाल- इस अवधि में मार्क्सवादी यशपाल हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उतरे। इन्होंने सामाजिक जीवन के यथार्थ को लेकर उसकी मार्क्सवादी व्याख्या की। यशपाल की रचनाओं पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इनकी कहानियों में मध्यम वर्गीय जीवन की विसंगतियों का मार्मिक चित्रण मिलता है। साथ ही निम्नवर्गीय शोषितों की व्यथा, अभाव और जीवन संघर्ष के भी दर्शन होते हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। महाराजा का इलाज, परदा, उत्तराधिकारी, आदमी का बच्चा, परलोक, कर्मफल, पतिव्रता, प्रतिष्ठा का बोझ ज्ञानदान, धर्मरक्षा, काला आदमी, चार आना, फूलों का कुरता आदि। पिजड़े की उड़ान, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल, आदि आपके कहानी संग्रह हैं।

उपेन्द्र नाथ अश्क- उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मानवतावादी दृष्टिकोण और मनोविश्लेषण चरित्र- युक्त कहानी लिखने वाले कहानीकार हैं। समाज की विषमताओं, मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियों, निम्न वर्गीय अभावग्रस्त जीवन- संकटों का मार्मिक अंकन वाली इनकी कहानियाँ कथा- शिल्प की दृष्टि से सफल कहानियाँ हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियों में डाची, आकाश चारी, नासूर, अंकुर, खाली डिब्बा, एक उदासीन शाम आदि कहानियाँ प्रसिद्ध कहनियाँ हैं। इन्होंने अपने जीवनकाल में दो सौ से अधिक कहानियाँ लिखी। बैगन का पैाधा , झेलम के सात पुल छीटे आदि कहानी - संग्रह इनके इन्हीं कहानियों के प्रसिद्ध संग्रह है।

रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी - रामप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी ने मनोवैज्ञानिक कहानियों के साथ-साथ प्रगतिवादी कहानियाँ लिखी, इनकी कहानियों में कहीं-कहीं उन्मुक्त प्रेम की छटा के भी दर्शन होते हैं। 'राजरानी' हिरन की आँखें, तमाशा, मोर्चा आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं।

पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र'- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इस काल में प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद से भिन्न एक अलग रास्ता बनाया, उस समय की राजनीति और समाज की विकृतियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाने वाले उग्र जी ने अंग्रजी संघर्ष के विरूद्ध चल रहे क्रान्तिकारी संघर्ष को लेकर कई कहानियाँ लिखी। 'उसकी माँ', 'देशभक्त' जैसी कहानी इनकी इसी कोटि की कहानियाँ हैं। 'दोजख की आग', इन्द्रधनुष आदि आपके कहानी-संग्रह हैं।

बिष्णु प्रभाकर- बिष्णु प्रभाकर एक सुधारवादी लेखक हैं। इन्होंने वर्तमान समय की समाजिक व्यवस्था तथा व्यक्ति एवं परिवार के सम्बन्धों को लेकर कहानियों की रचना की। इस कहानीकार ने वर्तमान सामाजिक एवं शासन व्यवस्था में व्यक्ति- जीवन के संकट को बड़े मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया है, इनकी ''धरती अब भी घूम रही है'' लोकप्रिय कहानी है, रहमान का बेटा, ठेका, जज का फैसला' गृहस्थी मेरा बेटा, अभाव आदि कहानियाँ बिष्णु प्रभाकर की उत्तम कोटि की कहानियाँ हैं।

अमृतलाल नागर- अमृतलाल नागर ने आज के जीवन के आर्थिक संकट, विपन्नता, पारिवारिक सम्बन्धों का तनाव आदि विषयों को अपनी कहानियों की सामग्री बनाया। दो आस्थाएँ, गरीब की हाय, निर्धन कयामत का दिन, गोरख धन्धा आदि कहानियाँ इनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ- मुंशी प्रेमचन्द पश्चात् हिन्दी कहानी संसार में कुछ ऐसे कहानिकार भी आये जिन्होंने मानवमन को केन्द्र में रखा। इन कहानीकारों ने सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा आदमी की वैयक्तिक पीड़ाओं और

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को अधिक महत्व दिया। इन्होंने मानव के अवचेतन मन की क्रियाओं और उनकी मानसिक ग्रन्थियों को अपनी कहानियों का विषय बनाया मानव के अन्तर्द्वन्द्व को केन्द्र में रखने के कारण इन कहानीकारों की कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्य और चरित्र की वैयक्तिक विशिष्टता विशेष रूप से व्यक्त हुई है। इन कहानिकारों में, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा, चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, आदि कहानीकार मुख्य हैं।

जैनेन्द्र कुमार- प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के यथार्थ और आदर्श की दिशा से बिल्कुल हटकर मानव मन के चितेरे के रूप में जिन अन्य कहानीकारों ने हिन्दी कहानी संसार में प्रवेश किया उनमें जैनेन्द्रकुमार का प्रमुख स्थान है। इनका ध्यान समाज के विस्तार की अपेक्षा व्यक्ति की मानसिक गुत्थियों, सामाजिक परिवेश, के दबाब और प्रतिबद्धता के कारण होने वाली वैयक्तिक समस्याओं की ओर अधिक गया। परिवार एवं समाज में नारी-पुरूषों के सम्बन्धों तथा उनसे उत्पन्न उलझनों का विश्लेषण करने वाले इनकी कहानी जहाँ लोक प्रिय और सर्वग्राह्य हुई हैं वहाँ इन कहानियों ने समाज के चिन्तकों को जीवन के अनके पहलुओं पर चिन्तन करने के लिए भी बाध्य किया हैं इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं- पत्नी, खेल, चोर, पाजेब, जाह्नवी, समाप्ति, एक रात, नीलम देश की राजकन्या , जय संधि, मास्टर जी आदि, जैनेन्द्र कुमार के आठ कहानी संग्रहों में इनकी सभी कहानियाँ संग्रहित हैं।

अज्ञेय- 'अज्ञेय' एक ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने मानव के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और गूढ़ रहस्यों को परखने का यत्न किया। इसलिए इनकी कहानियों में एक विशेष प्रकार की 'चिन्तन शीलता तथा तटस्थ बैदिकता के दर्शन होते हैं। विषय की दृष्टि से जैसी विविधता अज्ञेय जी की कहानियों मिलती है वह विविधता इस युग के अन्य कहानिकारों की कहानियों में कम मिलती हैं। इनकी प्रसिद्ध कहानियों में रोज, गैग्रीन, कोठरी की बात छोड़ा हुआ रास्ता, पगोड़ा वृक्ष, पुरूष का भाग्य' आदि कहानियाँ हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त अज्ञेय जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी घटनाओं तथा पौराणिक और ऐतिहासिक संन्दर्भों पर भी कहानियाँ लिखी हैं। विपथगा, शरणार्थी, परम्परा, अमर वल्लरी कोठारी की बात आदि आपके कहानी संग्रह है।

इलाचन्द्र जोशी- इलाचन्द्र जोशी फ्राइड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त को साथ लेकर चलने वाले लेखक हैं। इनकी कहानियों में मध्यमवर्गीय समाज के व्यक्तियों का विश्लेषण मिलता है। इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं - चरणों की दासी, रोगी, परित्यक्ता, जारज, अनाश्रित, होली, धन का अभिशाप, प्रतिव्रता या पिशाची, एकाकी, मैं, मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ आदि।

स्वातंत्योत्तर हिन्दी कहानी- स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन आये। स्वतंत्रता पश्चात् लिखी गयी हिन्दी कहानी में आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ। इन समस्याओं में निम्नवर्गीय व्यक्ति के द्वारा अपने विकास के लिए किये जाने वाले यत्नों से पैदा हुए अवरोध और संकटों से लेकर उच्चवर्गीय व्यक्तियों के जीवन में उपस्थित विसंगति, कुण्ठा आदि की बातें शामिल है। नगरीय जीवन में व्यक्ति का अकेलापन, नौकरीपेशा नारी के अनके पक्षीय सम्बन्ध और उससे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ, शिक्षितों की बेरोजगारी की समस्या, राजनैतिक गिरावट, परिवारों के टूटने आदि कई विषयों पर कहानियाँ लिखी गयी है। शिल्प की दृष्टि से इन कहानियों में कई प्रयोग किये गये हैं। इस समय के कहानीकारों में, मोहन राकेश राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अमर कान्त मन्नू भण्डारी, फणीश्वर नाथ रेणु, कमल जोशी, उषा प्रियंवदा शिवप्रसाद सिंह,

रघुवीर सहाय, रामकुमार भ्रमर, विजय चौहान, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, लक्ष्मी नारायण लाल, हिमांशु जोशी, हरिशंकर परसाई, महीपसिंह, श्रीकान्त वर्मा, कृष्ण वलेदव वैद, ज्ञानरंजन, सुरेश सिन्हा, गिरिराज किशोर, भीमसेन त्यागी, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ, विश्वेश्वर, महेन्द्र भल्ला, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, प्रबोध कुमार, प्रयाग शुक्ल गोविन्द्र मिश्र विजय मोहन सिंह आदि है। (हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-बाबू गुलाब राय- पृष्ठ- 165)

नयी कहानी- नयी कहानी सन् 1950 और सन् 1953 के पश्चात् अस्तित्व में आयी। वास्तव में 'नयी कहानी' लेखक साहित्य के क्षेत्र में एक आन्दोलन था। इस आन्दोलन से हिन्दी जगत में काफी तर्क वितर्क सामने आये, जिसके फलस्वरूप 'नयी कहानी' अपने स्वरूप, कथ्य ओर उद्धेश्य की दृष्टि से पूर्ववर्ती कहानियों से विशिष्ट है। 'स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जन जीवन में अनेक परिवर्तन आये जिसका यथार्थ प्रतिबिम्ब 'नई कहानी' में देखने को मिलता हैं।

कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'मुर्दों की दुनिया', तीन दिन पहले की बात, चार घर, मोहन राकेश की - 'मलबे का मालिक', राजेन्द्र यादय की 'जहाँ लक्ष्मी कैद हैं,' अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टर' आदि कहानियों में समकालीन यर्थाथ बखूबी व्यक्त हुआ है।

पुराने विश्वासों और मूल्यों को त्यागना तथा नवीन मूल्यों की खोज करना आधुनिकता है। आधुनिकता का यह लक्षण हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं से लकर चिन्तन मनन को भी प्रभावित कर रहा है। यह आधुनिकता मात्र नगरों और कस्बों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसने धीरे-धीरे ग्रामों को भी अपने आँचल में समेट लिया है। आज का कहानी कार भी जिससे वंचित नहीं है। इसलिए उसकी कहानी भी आधुनिकता की पक्षधर हो गयी है। शिल्प की दृष्टि से 'नयी कहानी' की अपनी विशिष्टता है। कहानी की भाषा, पात्र, घटना आदि में दिन प्रति दिन नये परिनवर्तन आ रहे हैं। इस कहानी में नये प्रकार के बिम्ब विधान, नयी भाषा शैली, नये उपमान और नये मुहावरे आदि में विशेषता परिलक्षित होती है। भाषा में अलंकारिता का अभाव तथा बोल चाल की परिपूर्णता होती है। वर्तमान में कहानी दो वातावरणों को केन्द्र में रखकर लिखी जा रही है। प्रथम ग्रामीण वातावरण और द्वितीय नगरीय परिवेश। ग्रामीण वातावरण को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानी आंचलिक कहानी कहलाती है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'तीसरी कसम' 'ठुमरी, 'लाल पान की बेगम, ' रसप्रिया' शैलेश मटियानी की 'प्रेतमुक्ति' माता' 'भस्मासुर', दो मुखों का एक सूर्य, शिवप्रसाद सिंह की 'नीच जात' धरा, मुरदा सराय, अँधेरा हँस्ता है, मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' 'भूदान', शेखर जोशी की 'तर्पण', राजेन्द्र अवस्थी की 'अमरबेल', लक्ष्मीनारायण लाल की 'माघ मेले का ठाकुर', रामदरश मिश्र की 'एक आँख एक जिन्दगी' आदि कहानियाँ आंचलिक कहानियाँ हैं।

नगरीय परिवेश को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानियों में नगरो की कृत्रिम जीवन प्रणाली, परिवार और समाज के अन्दर व्यक्तियों के नयी पद्धति के अन्तः सम्बन्ध, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में तनाव, व्यक्ति का अकेलापन, जीवन मूल्यों का विघटन इत्यादि का वर्णन विस्तार से हुआ है। निर्मल वर्मा के 'पराये शहर में' 'अन्तर' 'परिन्दे', 'लवर्स', 'लन्दन की रात', मोहन राकेश की 'वासना की छाया', 'काला रोजगार', मिस्टर भाटिया 'मलवे का मालिक', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', एक कमजोर लड़की का कहानी', 'टूटना', कृष्ण बलेदव वैद की ' अजनबी', 'बीच का दरवाजा,' 'भगवान के नाम सिफारिश की चिठ्टी', 'मन्नू भण्डारी की 'वापसी', 'मछलियाँ', 'गीत का चुम्बन', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'खून का रिश्ता', रघुवीर सहाय की प्रेमिका', 'मेरे और नंगी

औरत के बीच', 'सेब', रमेश बक्षी की 'आया गीता गा रही थी', 'अलग-अलग कोण', 'राजकुमार की लौ पर रही हथेली', 'सेलर', श्रीकान्त वर्मा की 'शव यात्रा', 'दूसरे के पैर', महीपसिंह की 'काला बाय, गोरा बाय', आदि कहानियाँ नगरीय परिवेश की कहानियाँ हैं।

छोटे-छोटे कस्बों के व्यक्तियों की मनोवृत्ति और उपेक्षित जन जीवन का चित्रण करने वाली कहानियोंमें कमलेश्वर की 'मुरदों की दुनिया', 'तीन दिन पहले की बात', 'चार घर', धर्मवीर भारती की 'सार्वत्री न0 दो', 'धुआँ', 'कुलटा', गुलकी बन्नों, 'अगला अवतार', 'कृष्णा सोवती की', यारों के यार,' अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक' 'डिप्टी कलेक्टरी' 'दोपहर का भोजन' विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब धम रही है', मनहर चौहान की 'घर धुसरा', रामकुमार भ्रमर की 'गिरस्तिन', हिमांशु जोशी की 'एक बूँद पानी' अभाव, हृदयेश की 'सभाएँ' 'डेकोरेशन पीस'' कहानियाँ काफी लोकप्रिय हुई।

ग्रामीण अंचल, नगरीय परिवेश और कस्बों के जन जीवन पर लिखी कहानियों के अतिरिक्त वर्तमान समाज की विकृतियों, व्यक्तियों के ढोंग, आरोपित प्रतिष्ठा, भ्रष्टाचार आदि पर व्यंग्य तथा उपहार करती हुई अनेक, कहानियाँ लिखी गयी, इन कहानियों में हरिशंकर परसाई की निठल्ले की डायरी, 'सड़क बन हरी है', 'पोस्टर एकता', शरद जोशी की 'रोटी और घण्टी का सम्बन्ध', 'बेकरी बोध' प्रमुख है।

वर्तमान में इन कहानियों की संख्या में वृद्धि करने वाले अन्य कहानीकारों में, गंगा प्रसाद विमल, दूघनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, गिरिराज किशोर, सुरेश सिंन्हा ज्ञानरंजन, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ, विश्वेश्वर, भीमसेन त्यागी, अमर कान्त, रतीलाल शाहनी, कुष्ण बलदेव वैद, विपिन अग्रवाल आदि है।

कहानी की इस जीवन यात्रा में साठ के बाद की कहानी में अनके आन्दोलन चलाये गये, जिनमें 'सामन्तर कहानी', 'सचेतन कहानी', 'अकहानी आदि साहित्य आन्दोलन मुख्य हैं। इन आन्दोलनों पर फ्रान्स-जर्मनी में प्रचलित आन्दोलनों का प्रभाव था। इन आन्दोलनों से कमलेश्वर , गंगाप्रसाद विमल, महीपसिंह, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन आदि कथाकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे। हिन्दी कहानी के विकास में मात्र इन आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही अपितु 'कहानी', नई कहानियाँ ' कल्पना', सारिका' संचेतना, कहानियाँ आदि कहानी पत्रिकाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अभ्यास प्रश्न

---

(5) हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर बाँटा गया है।

1. चार चरणों में ( )
2. तीन चरणों में ( )
3. पाँच चरणों में ( )
4. दो चरणो में ( )

(6) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की कहानी हैं-

1. इन्दुमती ( )
2. ग्यारह वर्ष का समय ( )
3. राजा भोज का सपना ( )
4. ढुलाई वाली ( )

(7) सही क्रम में लिखिए

1. कहानीकार	कहानी
2. न्द्रधर शर्मा गुलेरी	पुरस्कार
3. मुंशी प्रेमचन्द	रक्षा बन्धन
4. जयशंकर प्रसाद	पंच परमेश्वर
5. विश्वम्भर नाथ शर्मा	उसने कहा था

(8) प्रेमचन्द युगीत कहानियों की तीन विशेषताऐं लिखिए।

(9) कहानीकार यशपाल की कहानियाँ पर प्रभाव है।

1. मार्क्सवाद का
2. गाँधी वाद का
3. मानवतावाद का
4. व्यक्तिवाद का

(10) श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी की तीन कहानियों के नाम लिखिए।

अभ्यास प्रश्न

1- प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए।
2- नई कहानी के चार कहानीकारों के नाम लिखिए।

2.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके हैं कि -

- कथा साहित्य की दो प्रमुख विधाएँ उपन्यास और कहानी हैं।

- कहानी का आदि स्वरूप क्या है?
- कहानी का उद्भव कैसे हुआ ?
- कहानी का क्रमिक विकास कैसे हुआ?
- कहानी साहित्य के विकास में प्रेमचन्द का क्या योगदान रहा है?
- कहानी कारों का संक्षिप्त परिचय और उनकी कहानियाँ।

2.6 शब्दावली

पुरातन	-	प्राचीन, पुरानी
अविष्कार	-	खोज, निर्माण
अन्तर्सूत्र	-	अन्दर के सम्बन्ध
सम्राट	-	राजा
अलौकिक	-	जो सांसारिक न हो
परिमार्जित	-	शुद्ध
संस्कृततिष्ठ	-	तत्सम शब्दावली से परिपूर्ण
पराधीनता	-	गुलामी
ग्राह्य	-	ग्रहण करने योग्य
अंकन	-	आँकना, गणना, वर्णन,
वैयक्तिक	-	व्यक्ति सम्बन्धी
ह्रासोन्मुख	-	पतन की ओर जाने वाले

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – उत्तर

(1) 4. उपरोक्त सभी की कहानियाँ

(2) 3. काल्पनिक कहानियाँ हैं।

(3) 2. रानी केतकी की कहानी

(4) रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. चौरासी बैष्णवन की वार्ताः स्वामी गोकुल नाथ की रचना है।

2. वर्तमान कहानी लेखन की प्रेरण पूर्व में अंग्रजी और बंगला में रची गयी और हिन्दी में अनुदित कहानियों से मिली।

(5) हिन्दी कहानी के विकास के केन्द्र में मुंशी प्रेमचन्द को रखकर बाँटा गया है।

2- तीन चरणों में

(6) (3) राजा भोज का सपना

(7)

कहानीकार	**कहानी**
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	उसने कहा था।
मुंशी प्रेमचन्द	पंच परमेश्वर
जयशंकर प्रसाद	पुरस्कार
विश्वम्भर नाथ शर्मा	रक्षा बन्धन

(8) प्रेमचन्द युगीन कहानियों की तीन विशेषताऐं।

1. परिमार्जित भाषा वाली कहानियाँ हैं।
2. ये आदर्श और यथार्थवादी कहानियाँ हैं।
3. ये मानवीय सम्बन्धों को उद्घाटित करने वाली कहानियाँ हैं।

(9) कहानीकार यशपाल की कहानियों पर प्रभाव हैं

1. मार्क्सवाद का

(10) श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' की तीन कहानियाँ हैं।

1. राजरानी
2. हिरन की आँखें
3. तमाशा

अभ्यास प्रश्न 2

(1) प्रेमचन्दोत्तर कहानी की तीन विशेषताऐं

1. मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
2. मध्यम वर्गीय हासोन्मुख समाज के व्यक्तियों का विश्लेषण करने वाली कहानियाँ।
3. प्रगतिशील कहानियाँ

(2) नई कहानी के चार कहानीकारों के नाम-

1. कमलेश्वर
2. मोहन राकेश
3. राजेन्द्र यादव
4. अमरकान्त

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, साहित्य सहचर।

2- द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद,हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।

3- राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेमचंद युगीन काहानियों की विशेषताएँ वर्णित कीजिए।
2. आधुनिक कहानियों में व्यक्त समाजिक परिवेश का उद्घाटन कीजिए।

इकाई- 3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव
3.4 हिन्दी उपन्यास का विकास
  3.4.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
  3.4.2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
  3.4.3 प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

उपन्यास के उद्भव और विकास के विषय में जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक हैं कि उपन्यास क्या है ? इसके कौन-कौन से तत्व हैं ? और उपन्यास कितने प्रकार के होते हैं ? साथ ही आपको यह जानना भी आवश्यक होगा कि हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? तथा इसके विकास में किन-किन उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही ?

आपने 'हिन्दी गद्य का विकास' पढ़ते हुए देखा होगा कि हिन्दी गद्य का विकास किस तरह हुआ और किस तरह इस गद्य से हिन्दी की नई नई विधाओं का जन्म हुआ। हिन्दी कहानी के समान ही हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी प्राचीन नहीं है। इस विधा का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। वैसे तो भारतेन्दु युग को ही हिन्दी उपन्यास को जन्म देने का श्रेय जाता है लेकिन इस युग से पूर्व 1877 में श्रृद्धाराम फुल्लौरी ने भाग्यवती उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा का आरम्भ कर दिया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्री विवास दास के ''परीक्षा गुरू'' (1882) उपन्यास को हिन्दी के मौलिक उपन्यास की मान्यता प्रदान की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि यही हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके पश्चात् हिन्दी भाषा में अनेक तिलिस्मी जासूसी और ऐयारी उपन्यासों को सृजन हुआ, लेकिन मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों से इस विधा को नया आयाम मिला। इस इकाई में हम तिलिस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों से हटकर उन उपन्यासों के विषय में पढ़ेगे जो विशुद्ध रूप से हिन्दी उपन्यास स्वीकार किये जाते हैं।

उपन्यास शब्द उप+न्यास दो शब्दों के मेल से बिना है। जिसके 'उप' उपसर्ग का अर्थ होता है सामने निकट या समीप, और 'न्यास' का अर्थ है , धरोहर और रखना, इस आधार पर उपन्यास का अर्थ है एक लेखक अपने जीवन एवं समाज के आस पास जो कुछ भी देखता हो उसे अपने भाव विचार से कल्पना द्वारा सजा सँवार कर जिस विधा के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है वही 'उपन्यास' है। दूसरे शब्दों में जो साहित्यिक विधा जिसे पढ़कर यह आभास हो कि इसमें वर्णित घटना हमारे निकट की नहीं अपितु हमारी है 'उपन्यास' कहलाती है।

उपन्यास आधुनिक जीवन के सत्य को निकटता से समझने और उसे काल्पनिक रूप प्रदान करने वाली विधा है। यद्यपि उपन्यास की कथा काल्पनिक होती है किन्तु वह जीवन के यथार्थ का स्पर्श करती है। इसके पात्र समाज से जुड़े व्यक्ति होते हैं। इसकी घटनाएँ हमारे मध्य की होती है जिनमें एक तर्किक संगति होती है।

उपन्यास का जन्म पश्चिमी साहित्य से हुआ। पश्चिम के साहित्यकारों ने इस नयी विधा को जन्म दिया। समय-समय पर इसमें अनके परिवर्तन होते रहे। इसे सोद्देश्य लिखा जाता रहा और यह साहित्य की कहानी विधा का व्यापक रूप बन गया। पश्चिम से ही इसने भारतीय साहित्य में प्रवेश किया और आज यह हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक है। उपन्यास साहित्य के आचार्यों ने उपन्यास के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किये हैं।

1. शीर्षक
2. कथावस्तु- कथानक
3. कथोपकथन-संवाद योजना
4. पात्र और चरित्र चित्रण
5. देशकाल और वातावरण
6. भाषा और शैली
7. उद्देश्य

इन्हीं तत्वों के आधार पर उपन्यास की समीक्षा की जाती है। इन्हीं तत्वों को केन्द्र में रखकर उपन्यास विधा के आचार्यों ने उपन्यास के अनेक भेद किये हैं जिन्हें आपकी जानकारी के लिए संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

1. कथावस्तु के आधार पर उपन्यास

(अ) बिषयवस्तु की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास, परिवारिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास।
(ब) वर्णन शैली की दृष्टि से- घटना प्रधान उपन्यास एवं भाव प्रधान उपन्यास।

2. चरित्र चित्रण पर आधारित उपन्यास
3. देशकाल और वातावरण पर आधारित उपन्यास
4. भाषा शैली पर आधारित उपन्यास
5. उद्देश्य पर आधारित उपन्यास।

उपन्यास विधा पर की गयी इस शास्त्रीय चर्चा के पश्चात् अब हम आपको हिन्दी उपन्यास के उद्भव से परिचित कराऐंगे।

3.2 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम में अब तक आप हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास, तथा हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास का अध्ययन कर चुके हैं। आशा है इन पाठों से आप हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास तथा हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास को समझ गये होंगे। इन इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप गद्य और कहानी विधाओं की विशेषताओं से भी परिचित हो गये होंगे। यह इकाई हिन्दी उपन्यास से सम्बन्धित है। इस इकाई में हम आपको हिन्दी उपन्यास के स्परूप और इसके उद्भव व विकास के विषय में समझायेंगे।

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- उपन्यास के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के उद्भव को जान पायेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के विकास के विभिन्न चरणों के विषय में बता सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास के विकास में किन-किन लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके क्रमिक इतिहास को प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव

अब तक आपने उपन्यास के स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त की। इन जानकारियों से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न हो रहे होंगे कि क्या हिन्दी उपन्यास में समयानुकूल अनेक परिवर्तन हुए होंगे? आपके मन में इस प्रश्न का उभरना स्वाभाविक है। लेकिन इसका उत्तर जानने से पूर्व हमें हिन्दी उपन्यास के उद्भव के विषय में जानना भी

आवश्यक हो जाता है। जैसा आपको ज्ञात होगा कि हिन्दी कहानियों के अध्ययन करते समय आपको हम पूर्व भी यह जानकारी दे चुके है कि भारत में कथा साहित्य की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। रामायण, महाभारत, उपनिषद् आदि ग्रन्थ अनेक कथा कहानियों से भरे पड़े हैं लेकिन हिन्दी साहित्य में जिस कहानी को हम आज पढ़ते या सुनते हैं उसके बीज पश्चिमी साहित्य से भारतीय साहित्य में आये। इसीलिए वर्तमान के हिन्दी उपन्यास भी कहानी विधा की भाँति ही पश्चिमी साहित्य की देन है। तभी तो हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी कहानी साहित्य के इतिहास की भाँति बहुत प्राचीन नहीं है। जैसा हिन्दी साहित्य के इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि हिन्दी साहित्य की इस विधा का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ। पहले तो बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य की नींव रखी गयी और इसके पश्चात् भारतेन्दु युग में अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी से हिन्दी उपन्यास की शून्यता को समाप्त किया।

3.4 हिन्दी उपन्यास का विकास

जैसा कि हम पूर्व भी आपको बतला चुके हैं कि भारतेन्दु युग में जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं का जन्म हुआ उसी प्रकार हिन्दी उपन्यास भी अस्तित्व में आया। उस समय के शीर्ष साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने अनेक साहित्यकारों को इस विधा पर लेखनी चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी के परिणाम स्वरूप लाल श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरू' नामक वह उपन्यास लिखा जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है। इनके पश्चात् अनेक लेखकों ने इस विधा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मुंशी प्रेमचन्द इसी उपन्यास विधा को आगे बढाने में प्राणप्रण से जुट गये इसीलिए हिन्दी उपन्यास के इतिहासकारों ने मुंशी प्रेमचन्द को केन्द्र में रखकर हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम पर अपनी लेखकी चलायी।

इन्होंने हिन्दी के उपन्यास साहित्य का इतिहास लिखते समय इसे तीन चरणों में विभक्त किया।

1. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास।
2. प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यास।
3. प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास।

3.4.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

हिन्दी का प्रथम उपन्यास किसे स्वीकार करे? विद्वानों में इस बात पर पर्याप्त मतभेद है। लेकिन यह सत्य है कि प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यास लेखन की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी। कुछ विद्वान रानी केतकी की कहानी को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकारते हैं। लेकिन इसके लेखक इंशा अल्ला खाँ ने इसके शीर्षक पर 'कहानी' शब्द जोड़कर इसके उपन्यास होने की सम्भावना को समाप्त कर दिया। सन् 1872 में जब श्री श्रृद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक कृति की सर्जना की तो कुछ विद्वानों ने इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकारा लेकिन इसमें औपन्यासिक तत्वों के अभाव ने इसे भी उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में **परीक्षा गुरू** को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु के 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानकर आचार्य शुक्ल के द्वारा 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानने पर प्रश्न

चिह्न लगा दिया। आचार्य द्विवेदी भले उक्त दोनों उपन्यासों को हिन्दी के प्रथम उपन्यास स्वीकार करें लेकिन विद्वान इन दोनों उपन्यासों पर मराठी और बंगला की छाया मानते हैं।

यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व युग के विद्वान बहुत समय तक लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास के रूप में आदर देते रहे। लेकिन बाबू गुलाब राय जैसे विद्वान इस पर हितोपदेश की छाया देखते हैं। जिसमें हितोपदेश की सी उपदेशात्मकता और बीच-बीच में श्लोंको की उपस्थिति इसे एक मौलिक उपन्यास की मान्यता से वंचित करती है। इस उपन्यास के अतिरिक्त इस युग में बाबू राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दु' और पंडित बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी तथा सौ अजान एक सुजान' जैसे उपन्यास चर्चित रहे। इसी श्रृंखला में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पंडित अयोध्यासिंह 'हरिऔध' उपाध्याय का वेनिस का बाँका तथा ठेठ हिन्दी का ठाट' पंडित गोपालदास बरैया का 'सुशीला', लज्जाराम मेहता का धूर्त रसिकलाल, गोपाल राम गहमरी का 'सास पतोहू' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'लबंग लता' काफी चर्चित उपन्यास रहे। ये उपन्यासकार अपने युग के चर्चित उपन्यासकार रहे हैं। इन उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय और उनके द्वारा लिखे गये उपन्यासों का उल्लेख हम यहाँ पर इस प्रकार करेंगे।

1. **देवकी नन्दन खत्री** (सन् 1861-1913) हिन्दी के प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासकारों में देवकी नन्दन खत्री का नाम काफी चर्चित है। इनके सभी उपन्यासों में घटना-बाहुल्य तिलिस्म और ऐयारी की बातों पर जोर दिया गया है। इनके उपन्यास मौलिक उपन्यास हैं। हिन्दी भाषा में लिखे गये इनके उपन्यासों को पढ़ने के लिए उर्दू जानने वालों ने हिन्दी सीखी। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं- चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, भूतनाथ (पहले छः भाग) काजल की कोठरी, कुसुम-कुमारी, नरेन्द्र मोहिनी 'गुप्त गोदना' वीरेन्द्रवीर आदि। इन उपन्यासों के कारण हिन्दी भाषा का विस्तार हुआ। और हिन्दी उपन्यास विधा लोकप्रिय हुई।
2. **गोपाल दास गहमरी-** श्री गोपालदास गहमरी ने हिन्दी में अनेक जासूसी उपन्यासों का अनुवाद किया। उन्होने अपने जीवन काल में एक जासूसी पत्रिका भी निकाली जिसका नाम था 'जासूस', इस पत्रिका में अनेक जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती थी।
3. **किशोरी लाल गोस्वामी-** (सन् 1865-1932) श्री किशोरी लाल गोस्वामी साधारण जनता की अभिरूचि के उपन्यास लिखते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में 'लवंगलता', कुसुम कुमारी, अंगूठी का नगीना, लखनऊ की कब्र, चपला, तारा, प्राणदायिनी आदि साठ से अधिक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में साहित्यिकता अधिक है लकिन सामान्य पाठक की रूचि को उदार बनाने की विशेषता को न उभार सकने के कारण ये इनके उपन्यास मात्र बौद्धिक वर्ग की रूचि का परिष्कार करते हैं।
4. **बाबू ब्रजनन्दन सहाय-** बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने अपने जीवन काल में 'सौन्दर्योपासक' आदर्श मित्र' जैसे चार उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में घटना वैचित्रय और चरित्र-चित्रण की अपेक्षा भावावेश की मात्रा अधिक है।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त उस युग में अनेक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, इनमें श्री गंगा प्रसाद गुप्त का 'पृथ्वीराज चौहान' और श्री श्याम सुन्दर वैद्य का 'पंजाब पतन' जैसे उपन्यास काफी चर्चित रहे। प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्श को उभारते का प्रयत्न किया है।

3. 4.2 प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास के क्षत्र में 'प्रेमचन्द' के आगमन से एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। इस युग के उपन्यासकारों ने जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का कार्य किया। इस युग का प्रारम्भ प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' नामक इस उपन्यास से हुआ जिसे सन् 1918 में लिखा गया था। वैसे तो पूर्व में मुंशी प्रेमचन्द ने आदर्शवादी उपन्यास लिखे लेकिन बाद में ये यथार्थवादी उपन्यास लिखने लगे। इन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को स्थान दिया। इस युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार होने के कारण मुंशी प्रेमचन्द से प्रेरणा पाकर कई उपन्यासकार हिन्दी उपन्यास विधा को आगे बढ़ाने लगे। इनमें कुछ यथार्थवादी उपन्यासकार थे तो कुछ आदर्शवादी। इस युग के प्रतिनिधि उपन्यास कर निम्नलिखित थे -

1. **उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द** (सन्1881-1936) हिन्दी में चरित्र प्रधान उपन्यास लिखने में मुंशी प्रेमचन्द की चर्चा सबसे पहले होती है । हिन्दी उपन्यास का क्रमबद्ध और वास्तविक विकास प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य से ही होता है। इससे पूर्व के उपन्यास या तो मराठी-बंगला और अंग्रजी के अनुदित उपन्यास थे या तिलिस्मी, एय्यारी और जासूसी उपन्यास। लेकिन प्रेमचन्द के उपन्यासों में इन सबसे हटकर जो सामाजिक परिदृश्य उत्पन्न हुए उनसे हिन्दी उपन्यास विधा को एक नई दिशा मिली। मुंशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में तीन प्रकार के उपन्यास लिखे। इनकी पहली श्रेणी में आने वाले उपन्यास 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' है जिन्हें इन्होंने प्रारम्भिक काल में लिखा। दूसरी श्रेणी के उपन्यास 'सेवा सदन', निर्मला और गबन, है। इस श्रेणी के उन्यासों में मुंशी प्रेमचन्द द्वारा सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। तीसरी श्रेणी के उपन्यास- प्रेमाश्रय, रंगभूमि , कायाकल्प कर्मभूमि और गोदान है। इस श्रेणी के उपन्यासों में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने जीवन के एक अंश नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन को एक साथ देखा है। इनके ये सभी प्रकार के उपन्यास किसी एक वर्ग- विशेष तक सीमित नहीं वरन समाज के सभी वर्गों तक फैले हैं। प्रेमचन्द के इन उपन्यासों में कहीं तो दहेज प्रथा तथा वृद्धावस्था के विवाह से उत्पन्न शंका और अविश्वास के दुष्परिणाम उभरते हैं तो वहीं आभूषण की लालसा और उसके दुष्परिणामों सामने आते दिखायी देते हैं। 'सेवा सदन' और 'निर्मला इसके उदाहरण हैं। इसी तरह रंगभूमि, कायाकल्प और कर्मभूमि में भारत की तत्कालीन राजनीति की स्पष्ट छाप दिखायी देती हैं। इन उपन्यासों में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध चल रहे महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन और समाज सुधार की झलक स्थान-स्थान पर उभरती है। इन उपन्यासों की भाँति 'प्रेमाश्रय' जैसे उपन्यास तत्कालीन जमीदारी प्रथा और कृषक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। 'गोदान', प्रेमचन्द जी का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास हैं, जिसे विद्वानों ने ग्राम्य जीवन के महाकाव्य की संज्ञा दी है। 'गोदान' को अगर हम प्रेमचन्द युगीन भारत की प्रतिनिधि कृति कह दें, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।
2. **जयशंकर प्रसाद**-(सन् 1881- 1933) प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में जयशंकर प्रसाद का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने मात्र उपन्यास ही नहीं कहानियाँ भी लिखी, लेकिन इनकी सभी कहानियाँ आदर्शवादी कहानियाँ हैं; जबकि उपन्यास यथार्थ के अत्यन्त संनिकट है। प्रसाद जी ने अपने जीवन काल में तीन उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में तितली और कंकाल पूरे और 'इरावती' अधूरा उपन्यास है। प्रसाद जी एक सुधारवादी उपन्यासकार थे इसलिए वे लोगों का ध्यान समाज में फैली बुराइयों की ओर आकृष्ट कर उनसे बचे रहने के

लिए सजग करते थे। इनका 'कंकाल' नामक उपन्यास गोस्वामी के उपदेशों के माध्यम से हिन्दु संगठन और धार्मिक तथा सामाजिक आदेर्शों को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसी संदर्भ में इनका तितली उपन्यास ग्रामीण जीवन की झाँकी और ग्रामीण समस्याओं को प्रस्तुत करता है। इरावती इनका ऐतिहासिक उपन्यास जो इनके आसामायिक निधन से अधूरा ही रह गया।

3. **पंण्डित विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'** (सन् 1891-1945) पंडित विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक' उपन्यासकार और कहानीकार दोनों ही थे। 'मिखारिणी', माँ, और संघर्ष, इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं, तो मणिमाला और 'चित्रशाला' इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह। 'माँ' आपका सफलतम उपन्यास है।
4. **सुदर्शन** (सन् 1869-1967)- श्री 'सुदर्शन' का पूरा नाम पंडित बदरीनाथ भट्ट था। ये पहले उर्दू में लिखते थे और बाद में हिन्दी कथा साहित्य में अवतीर्ण हुए। इनके 'अमर अभिलाषा' और 'भागवन्ती' अन्यन्त लोकप्रिय उपन्यास है। इनके उपन्यास और कहानियों में व्यक्तिगत और परिवारिक जीवन-समस्याओं का चित्रण मिलता है। ये भी प्रेमचन्द की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे।
5. वृन्दावन लाल वर्मा (सन् 1891-1969)-श्री वृन्दावन लाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यास कार है। इन्होंने अपने जीवन काल में, 'गढ़-कुण्डार' विरादा की पद्मिनी, मृग नयनी, माधवजी सिन्धिया, महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी, मुसाहिबजू, ललित विक्रम और अहिल्याबाई जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तो कुण्डली चक्र, सोना और संग्राम, कभी न कभी, टूटे काँटे, अमर बेल, कचनार जैसे उपन्यास भी हैं जिनमें प्रेम के साथ साथ अनके सामाजिक समस्याओं पर भी खुलकर लिखा गया है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसे लोकप्रियता में किसी अन्य उपन्यास से कम नहीं आँका जा सकता।
6. **मुंशी प्रताप नारायाण श्रीवास्तव:-** शहरी जीवन पर अपनी लेखनी चलाने वाले मुंशी प्रताप नारायण भी प्रेमचन्द युगीन उपन्याकारों के मध्य सदैव समादृत रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में, विदा, विकास, और विलय, नाम तीन उपन्यास लिखे। मुंशी प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने इन तीनों उपन्यासों में एक विशेष सीमा में रहकर स्त्री स्वतन्त्रता का पक्ष लिया।
7. **चण्डी प्रसाद हृदयेश-** श्री हृदयेश एक सफल कहानी कार और उपन्यास रहे हैं। इनके मंगल- प्रभात 'और 'मनोरमा' नामक दो उपन्यास हैं। कवित्व शैली में रची गई इनकी कृतियों में 'नन्दन निकुंज' और ''वनमाला''नामक दो कहानी संग्रह भी हैं। आपकी कथा शैली की तुलना अधिकांश विद्वान संस्कृत के गद्यकार बाण भट्ट की कथा शैली से करते हैं।
8. **पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'**(सन् 1900-1967) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों के मध्य में अपनी एक विशिष्ट शैली के लिए काफी चर्चित रहे। 'चन्द हसीनों के खतूत' दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, शराबी, जीजीजी, घण्टा, फागुन के दिन चार आदि आपके महत्वपूर्ण किन्तु चटपटे उपन्यास हैं। आपने महात्मा ईसा नामक एक नाटक और 'अपनी खबर' नामक आत्म कथा लिखी जो काफी चर्चित रही।
9. **जैनेन्द्र कुमार** (सन् 1905-1988)- जैनेन्द्र कुमार द्वारा उपन्यास के क्षेत्र में नयी शैली का सूत्रपात किया गया। इनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की एक विशेष शैली दिखायी पड़ती है। तापोभूमि, परख, सुनीता, सुखदा, त्यागपत्र, कल्याणी, मुक्तिबोध, विवरण, व्यतीत, 'जयवर्धन', अनाम स्वामी, आदि आपके अनेक उपन्यास हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त आपके वातायन, एक रात, दो चिड़ियाँ और नीलम देश की राजकन्या जैसे कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए। आने हिन्दी साहित्य को लगभग एक दर्जन उपन्यासों, दस से अधिक कथा-संकलनों, चिन्तनपरक निबन्धों तथा दार्शानिक लेखों से समृद्ध किया। स्त्री पुरूष सम्बन्धों, प्रेम विवाह और

काम-प्रसंगों के सम्बन्ध में आपके विचारों को लेकर काफी विवाद भी हुआ। जैनेन्द्र जी को 'भारत का गोर्की' माना जाता हैं। आपकी कई रचनाओं को पुरस्कृत भी किया गया।

10. **शिवपूजन सहाय** (सन् 1893-1963)- श्री शिवूजन सहाय प्रायः सामाजिक विषयों पर लेख लिखते थे। इन्होंने 'देहाती दुनियाँ', नामक एक आंचलिक उपन्यास लिखा।
11. **राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह** (सन् 1891-1966) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने जीवन काल में 'राम-रहीम' नामक वह प्रसिद्ध उपन्यास लिखा जिसकी कथा शैली ने सहृदय पाठकों को इसकी और आकृष्ट किया। इसके अतिरिक्त आपने चुम्बन और चाँटा, पुरूष और नारी, तथा संस्कार जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा को और समृद्ध किया।

प्रेमचन्द के युग मे हिन्दी उपन्यास विविध मुखी होकर निरन्तर विकास उन्नत शिखरों को स्पर्श करने लगा। इस युग में उपरोक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त महाप्राण निराला, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, भागवती प्रसाद वाजपेयी आदि लेखक-कवियों ने उपन्यास लेखन प्रारम्भ किया, लेकिन प्रेमचन्दोत्तर युग में ही इन्हें विशेष प्रसिद्धि मिली।

3. 4.3 प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास

जैसा आप जानते होंगे कि मुशी प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यास का प्रवर्तक कहा जाता है। इन्ही प्रेमचन्द के प्रभामण्डल से आकर्षित होकर कालान्तर में अनेक उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी उपन्यास संसार का भण्डार भरा। इन सभी उपन्यासकारों ने युगीन परिधि से हटकर हिन्दी उपन्यास को नई-नई दिशाओं की ओर अग्रसर किया। पूर्व में इन उपन्यासकारों पर गाँधीवाद का प्रभाव पड़ा। लेकिन बाद में कार्ल मार्क्स, फ्रायड आदि के प्रभाव स्वरूप इन्होंने प्रगतिवादी और मनोविश्लेषणवादी विचार धारा के अनुकूल उपन्यास लिखे। प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार निम्नलिखित हैं -

1. **भगवती चरण वर्मा** (सन् 1903-1981) भगवती चरण वर्मा प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार है। सन् 1927 में इनके 'पतन' और सन् 1934 में 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। इनका 'चित्रलेखा' उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिस पर दो बार फिल्में बनी। यह पाप-पुण्य की परिभाषा देने वाला उपन्यास बन गया। साहित्य जगत में जिसकी सर्वत्र धूम मच गयी । इन उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी ने 'तीन वर्ष' 'आखिरी दाँव', टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीमा, वह फिर नहीं आयी, सबहिं नचावत राम गोसाई, भूले बिसरे चित्र, रेखा, युवराज चुण्डा, प्रश्न और मरीचिका, सीधी-सच्ची बातें, चाणक्य आदि उपन्यासों में वर्मा जी ने सामाजिक सम्बन्धों और अन्तर्मन की परतों को खोलने में पूर्णत: सफलता पाई।
2. **आचार्य चतुरसेन शास्त्री** (सन् 1891-1961) आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने हृदय की प्यास, हृदय की परख, गोली, सोमनाथ, वैशाली की नगरवधू, धर्मपुत्र, खग्रास , वयं रक्षाम:, आत्मदाह, मन्दिर की नर्तकी, आदि उपन्यास लिखकर प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में जो भूमिका निभायी है इसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम ही है। आचार्य जी ने अपने कथा साहित्य की अधिकतर सामग्री पुराण और इतिहास से उठायी है। तत्सम् शब्दावली से युक्त इनकी भाषा इस युग के अन्य उपन्यासकारों से भिन्न है।

3. **भगवती प्रसाद वाजपेयी** (सन् 1899-1973)- श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने जीवन काल में ''प्रेमपथ, प्यासा, कर्मपथ, चलते-चलते, निमन्त्रण, दो बहिने, परित्यक्ता, यथार्थ से आगे, गुप्तधन, विश्वास का बल, टूटा टी सेट, आदि उपन्यास लिखकर औपन्यासिक जगत में नई क्राँन्ति उत्पन्न की। आपने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों और उसके अन्तर्जगत की व्याख्या और विश्लेषण को औपन्यासिक ताने-बाने में बुना है।
4. **यशपाल** (सन् 1903-1975)- श्री यशपाल का नाम प्रगतिवादी और यथार्थवादी कथाकारों में सबसे पहले आता है। 'दादा कामरेड,' देशद्रोही, मनुष्य के रूप, बारह घण्टे, दिव्या, अमिता जैसे उपन्यास आपने सामाजिक परिप्रेक्ष्य और इतिहास को लेकर लिखे हैं। आपका 'झूठी सच' उपन्यास भागों में लिखा उपन्यास है।
5. **अज्ञेय** (सन् 1911-1987)- मनोवैज्ञानिक कथाकारों में 'अज्ञेय' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी (दो भाग) 'अपने-अपने अजनबी', नदी के द्वीप आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
6. **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** (सन् 1907-1979) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आलोचक और निबन्धकार होने के साथ साथ एक सफल उपन्यासकार भी थे। इन्होंने अपने जीवन काल में 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारूचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा', और 'अनामदास का पोथा', जैसे आत्मकथ्य परक और विशिष्ट कथा शैली के उपन्यास लिखे।
7. **सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** (सन् 1998-1961) उपन्यास रचना में स्वछंदता दिखाने वाले सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने कविता के अतिरिक्त 'अप्सरा' अलका, 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'चाटो की पकड़', और बिल्लेसुर का बकरिहा', जैसे उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में जहाँ अशिक्षित दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित होती है वहाँ सामाजिक रूढ़ियों एवं शोषकों के प्रति भी आक्रोश दिखायी देता है।
8. **इलाचन्द्र जोशी** (सन् 1902-1987) मनोविश्लेषणत्मक उपन्यास लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने जीवन काल में 'घृणामयी', 'मुक्ति पथ,' जिप्सी, सन्यासी, ऋतुचक्र, सुबह के भूले, जहाज का पंछी, प्रेत और छाया तथा पर्दे की रानी जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। 'जहाज का पंछी', जैसे उपन्यास इनका सबसे लोकप्रिय उपन्यास है।
9. **राहुल सांकृत्यायन** (सन् 1893-1963) यात्रा साहित्य के संपोषक और इतिहास पर सूक्ष्मदृष्टि रखने वाले राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी उपन्यास साहित्य की समृद्धि के लिए 'सिंह सेनापति', 'जयौधेय', मुधर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री', 'दिवोदास', जीने के लिए आदि उपन्यास लिखे, इनके ये उपन्यास मार्क्सवाद और बौद्ध सम्प्रदाय से प्रभावित हैं।
10. **रांगेय-राधव**(सन् 1922-1962) इनका वास्तविक नाम तिरूमल्लै नम्बाकम वीर राधव था। इन्होंने तीस से अधिक उपन्यास लिखे। धरौंदा, सीधा-साधा रास्ता, विषाद मठ, हुजूर, काका, कब तक पुकारूँ, मुर्दो का टीला, आखिरी आवाज, प्रतिदान अँधेरे जुगुनू, आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।
11. **फणीश्वरनाथ 'रेणु'**(सन् 1921-1977) आंचलिक उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त फणीश्वरनाथ रेणु ने समाज में व्याप्त शोषण और दमन के विरूद्ध आवाज उठायी। इनका मैला आँचल उपन्यास काफी चर्चित हैं। इसके अतिरिक्त 'रेणु' जी ने 'परती परिकथा', दीर्घतपा, जुलूस और चौराहे जैसे उपन्यासों की रचना की।
12. **राधाकृष्ण** (1912-1971) राँची में जन्मे राधाकृष्ण ने प्रेमचन्द के समय कथा साहित्य लिखकर काफी ख्याति अर्जित की 'फुटपाथ', सनसनाते सपने, रूपान्तर, सपने विकाऊ हैं, इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

13. **अमृतलाल नागर** (सन् 1916-1990) प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान हैं। इन्होंने अपने जीवनकाल में 'शतरंज की मोहरे' ,सहाग के नुपुर, बूँद और समुद्र, अमृत और बिष, सेठ बाँकेलाल, नाच्यो बहुत गोपाल, मानस का हंस, और खंजन-नयन, जैसे चर्चित उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास संसार की समृद्धि में बहुत बड़ा योगदान दिया।
14. **बिष्णु प्रभाकर** (सन् 1912) गाँधीवादी विचारधारा के कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर उपन्यासकार ही नहीं कहानीकार भी थे। इन्होंने अपने जीवन काल में 'स्वप्मयी', निशिकान्त', तट के बन्धन, और ढलती रात, जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे।
15. **नागार्जुन** (सन् 1911) मार्क्सवाद में आस्था रखने वाले नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन के चित्रकार थे। इन्होंने रातिनाथ की चाची, बलचमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, दुःखमोचन, वरूण के बेटे, कुम्भीपाक जैसे चर्चित उपन्यास लिखे।
16. **उप्रेन्द्रनाथ 'अश्क'** (सन् 1910-1996) मध्यम वर्गीय व्यक्ति की घुटन, बेबसी, और यौनकुंठा जैसे बिषयों पर लेखनी चलाने वाले उपेन्द्रनाथ अश्क, नाटककार ही नहीं उपन्यासकार भी थे। सितारों के खेल, गिरती दीवारें, गर्मराख, बड़ी-बड़ी आँखें'' , पत्थर-अल-पत्थर, शहर में घूमता हुआ आईना, बाँधों न नाव इस ठाँव, आपकी प्रसिद्ध उपन्यास कृतियाँ हैं
17. **गुरूदत्त** (सन् 1919-1971) राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक गुरूदत्त ने अपने उपन्यासों में संस्कृति तथा वैदिक विचारधारा को श्रेष्ठ दिखाया। पुष्यमित्र, विश्वासघात, उल्टी बही गंगा, इनके प्रसिद्ध उपन्यास है।
18. **डॉ0 देवराज** (सन् 1921) मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज का जीवन चित्रित करने वाले डॉ0 देवराज पथ की खोज, बाहर-भीतर, रोड़े और पत्थर, अजय की डायरी, दूसरा-सूत्र'' जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी की सतत् सेवा की ।
19. **मोहन राकेश** (सन् 1925-1972) एक नाटकार के रूप में ख्याति प्राप्त करने वाले मोहन राकेश ने कई उपन्यास भी लिखे। 'अँधेरे बन्द कमरे'', 'नीली रोशनी की बाहें, न जाने वाला कल, इनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।
20. **भीष्म साहनी** (सन् 1915) साम्यवाद से प्रभावित श्री भीष्म साहनी की मूल धारणा मानवतावादी रही है। इन्होंने अपने जीवनकाल में वसंती, तमस, झरोखे, कडियाँ जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास जगत को और अधिक समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

उपरोक्त उपन्याकारों के अतिरिक्त अन्य जिन उपन्यासकारों ने उपन्यास विधा पर लेखनी चलाकर इसे समृद्ध करने का बीड़ा उठाया उनमें प्रमुख उपन्यासकार है- कमलेश्वर-सुबह दोपहर शाम, राजेन्द्र यादव- 'उखड़े हुए लोग', राजेन्द्र अवस्थी- 'जंगल के फूल', हिमांशु जोशी- अरणय, रामवृक्ष बेनपुरी- 'पतितों के देश में, शिवप्रसाद सिंह - गली आगे मुड़ती हैं, रघुवीरशरण मित्र- राख और दुल्हन, भैरव प्रसाद गुप्त- सती भैया का चौरा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना- सोया हुआ जल, धर्मवीर भारती- गुनाहों का देवता, मोहन लाल महतो - वियोगी, महामंत्री आदि।

इन उपन्यासकारों में कुछ उपन्यासकार ऐसे भी हैं जिन्होंने आँचलिक उपन्यासों के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ये अन्य उपन्यासकार हैं- उदयशंकर भट्ट- सागर, लहरें और मनुष्य, देवेन्द्र सत्यार्थी- रथ के पहिये, ब्रह्मपुत्र, बलभद्र ठाकुर- आदित्यनाथ, देवताओं के देश में, नेपाल की बेटी, हिमांशु श्रीवास्तव - नदी फिर बह चली, रामदरश

मिश्र- पानी के प्राचीर, शैलेश मटियानी- हौलदार, राजेन्द्र अवस्थी- जंगल के फूल, सूरज किरण की छाँह, मनहर चौहान- हिरना सावरी, श्याम परमार- मोरझल, राही मासूम रजा- आधा गाँव आदि।

स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय जीवन के बदलते परिवेश में कुछ नये उपन्यासकार उभरकर आये जिन्होंने समाजिक संघर्ष, व्यक्ति और परिवार के सम्बन्ध, भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण, नैतिक मूल्यों का परिवर्तन, परम्परा और रूढिवाद के प्रति विद्रोह, आधुनिकता का आकर्षण जैसे विविध विषयों को अपने उपन्यासों के माध्यम से उभारा। इन उपन्यासकारों में- यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र- पथहीन, दिया जला दिया बुझा, गुनाहों की देवी, यज्ञदत्त शर्मा- इनसान, निर्माणपथ, महल और मकान, बदलती राहें, मन्नू भंडारी- आपका बंटी, उषा प्रियंवदा, पचपन खम्भे लाल दीवारें, शेष यात्रा, रूकेगी नहीं राधिका, रमेश वक्षी- अठारह सूरज के पौधे, महेन्द्र मल्ला- पत्नी के नोट्स, बदी उज्जयाँ- एक चूहे की मौत आदि उपन्यास बड़े लोकप्रिय और प्रख्यात हैं।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास लेखन में भले पुरूष उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही लेकिन बाद में धीरे-धीरे इस विधा को आगे बढ़ाने में महिलाएँ भी जुड़ने लगी। इन महिलाओं में उषा मित्रा के उपन्यास काफी चर्चित रहे। बाद में चन्द्रकिरण, कंचनलता सब्बरवाल, शिवानी जैसी प्रतिभा सम्पन्न लेखिकाओं ने उपन्यास विधा को अनेक विस्मरणीय रचनाएँ दी।

इसी श्रृखंला को बाद में मन्नू भण्डारी, चित्रा मुद्गल, मालती परूलकर, दीप्ति खण्डेलवाल, मालती जोशी, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा कृष्णा अग्निहोती, ममता कालिया निरूपमा शास्त्री कृष्णा सोबती, रजनी पन्निकर, संतोष शैलजा, सूर्यवाला, सिम्मी हर्षिता , मैसेयी पुष्पा राजी सेठ कमल कुमार, स्नेह मोहनीश आदि महिलाओं ने आगे बढाया और बढ़ा रही है।

अभ्यास प्रश्न

(1) हिन्दी के वर्तमान उपन्यास का स्वरूप हमें प्राप्त हुआ है। सही का चिह्न लगाये-

1. भारतीय प्राचीन साहित्य से ( )
2. पाश्चात्य साहित्य से ( )
3. पूर्वी साहित्य से ( )
4. उत्तरी साहित्य से ( )

(2) हिन्दी उपन्यास के तत्व हैं- सही का चिह्न लगायें

1. कथानक
2. संवाद
3. उद्देश्य
4. उपरोक्त सभी

(3) हिन्दी उपन्यास समग्र स्वरूप हैं, सही पर चिह्न लगायें।

1. कविता का
2. नाटक का
3. कहानी का
4. एंकाकी का

(4) विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास का इतिहास लिखते समय इसे निम्नलिखित काल खण्डों में बाँटा हैं, सही पर चिह्न लगायें

1. चार काल खण्डों में
2. छः काल खण्डों में
3. तीन काल खण्डों में
4. पाँच काल खण्डों में

(5) प्रेमचन्द पूर्व युग के किन्ही चार उपन्यास कारों के नाम लिखियें

(6) प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों की दो विशेषताऐं बतलाइए।

(7) प्रेमचन्द पूर्व युग के चार उपन्यासकारों के नाम और प्रत्येक की एक-एक रचना का उल्लेख कीजिये।

उपन्यासकार **उपन्यास**

1. .....
2. .....
3. .....
4. .....

(8) निम्नलिखित उपन्यासकारों के उपन्यासों की दो-दो विशेषताऐं लिखिये।

1. प्रेमचन्द्र
2. जयशंकर प्रसाद

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचन्द पूर्व युग के चार उपन्यासकारों के उपन्यासों का नाम लिखिये।
2. प्रेमचंन्दोत्तर उपन्यासकारों में से किन्ही पाँच उपन्यासकारों का जीवनकाल और उनकी दो उपन्यास रचनाओं के नाम लिखिए।

3. किन्ही पाँच महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों का नामोल्लेख कीजिये।

3.6 सारांश

आपने इस इकाई को ध्यान से पढ़ा होगा। इससे आपको ज्ञात हुआ होगा कि उपन्यास विधा साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय विधा है। इस इकाई को पढने के पश्चात् आप -

- उपन्यास की परिभाषा बता सकेंगे।
- उपन्यास के तत्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- इससे आप यह भी समझ सकेंगे कि उपन्यास में केवल कल्पित कथा को ही स्थान नहीं दिया जाता अपितु जीवन के तथ्यों को भी स्थान दिया जाता है।
- हिन्दी उपन्यास के विकास को काल खण्डों के आधार पर भी समझ सकेंगे।
- प्रमुख उपन्यासकार तथा उनकी रचनाओं के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- उपन्यास रचना में केवल पुरूषों का ही योगदान नहीं अपितु महिलाओं का भी योगदान है।
-

3.7 शब्दावली

1.	अध्ययनोपरान्त	-	पढ़ने के बाद
2.	तिलिस्मी	-	अद्भुत या अलौलिक व्यापार
3.	जासूसी	-	गुप्तचरी
4.	आयाम	-	विस्तार
5.	समयानुकूल	-	समय के अनुकूल
6.	प्राणपण	-	तन मन धन से
4.	सृजना	-	रचना, निर्माण
5.	ऐतिहासिक	-	इतिहास से संदर्भित
9.	प्रेमचन्दोत्तर	-	प्रेमचन्द के पश्चात्
10.	औपन्यासिक	-	उपन्यास के
8.	आत्मकथ्यपरक	-	आत्म कथा शैली में
9.	प्रोत्साहित	-	किसी काम के लिए उत्साह बढ़ाना

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 2. पाश्चात्य साहित्य से

(2) 4. उपरोक्त सभी

(3) 3. कहानी का

(4) 3. तीन काल खण्डों में,

(5) 1. जयशंकर प्रसाद
2. पंण्डित विश्वम्भर नाथ शर्मा
3. सुदर्शन
4. वृन्दालाल शर्मा

(6) 1. अनुदित उपन्यास
2. तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास

(7)

	उपन्यासकार	**उपन्यास**
1.	श्री निवासदास	'परीक्षा गुरू'
2.	पंडित बालकृष्ण भट्ट	'नूतन ब्रहमचारी'
3.	देवकी नन्दन खत्री	'चन्द्रकांता'
4.	किशोरी लाल गोस्वामी	'लबंग लता

(8) **प्रेमचन्द्र**

1. यथार्थवादी उपन्यास
2. ग्रामीण जीवन की झाँकी

जयशंकर प्रसाद

1. यथार्थवादी उपन्यास
2. समाज के निर्माण और सुधार प्रवृत्ति वाले उपन्यास

लघु उत्तरीय

(1) प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में चार उपन्यासकार थे

1.	बाबू राधाकृष्ण दास- इनका उपन्यास है-	'निःसहाय हिन्दु'
2.	बालकृष्ण भट्ट - इनका उपन्यास है-	'नूतन ब्रह्मचारी
3.	पंडित गोपालदास बरैया- इनका उपन्यास है-	'सुशीला'
4.	लज्जाराम मेहता- इनका उपन्यास है-	'धूर्त रसिक लाल'

(2) प्रेमचन्दोत्तर पाँच उपन्यासकार हैं-

1. भागवती चरण वर्मा

उपन्यास-1. चित्रलेखा

2. आखिरी दाँव

2. भागवती प्रसाद वाजपेयी

उपन्यास -1. प्रेमपथ

2. प्यासा

3. चतुरसेन शास्त्री

उपन्यास -1. वयं रक्षामः

2. आत्मदाह

4. यशपाल- जीवनकाल

उपन्यास -1. अमिता

2. दिव्या

5. अज्ञेय

उपन्यास -1. नदी के द्वीप

2. अपने-अपने अजनबी

(3) पाँच महिला उपन्यासकार हैं-

1. मन्नू भण्डारी
2. चित्रा मुद्गल
3. मालती जोशी
4. उषा प्रियंवदा
5. मैत्रेयी पुष्पा

3.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राय, बाबू गुलाब, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपन्यास के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की विशेषता बताइए।

इकाई 4 उसने कहा था : पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 जीवनी/व्यक्तित्व
4.3.1 कृतित्व –वस्तु पक्ष
4.3.2 भाषा शैली
4.4 'उसने कहा था' : परिचय
4.5 कहानी की विशेषता
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम विशिष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त होता है। आप लोग इस इकाई में गुलेरी जी की साहित्य साधना एवं उनके जीवन परिचय से अवगत होंगे। चंद्रधर शर्मा गुलेरी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वे प्रेमचंद और महाकवि जयशंकर प्रसाद के समकालीन थे। प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने गुलेरी जी को 'अमर कथा शिल्पी' की संज्ञा से विभूषित किया है। वास्तव में हिन्दी के साधारण पाठक गुलेरी जी को 'उसने कहा था' जैसी अमर कहानी के लेखक के रूप में ही जानते हैं। जो

पाठक तनिक अधिक जिज्ञासु और सचेत हैं उनकी नजर में वे 'कछुआ धर्म' और 'मोर सी मोहि कुठाऊँ' जैसे निबंधों के तेज तर्रार लेखक हैं। 'साहित्य के इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में शुक्ल जी ने श्री चंद्रधर शर्मा को संस्कृत के प्रकांड प्रतिभाशाली विद्वान के बतौर याद किया है। गुलेरी जी के पांडित्य और प्रतिभा को देखते हुए संभवतया पं. पद्म सिंह शर्मा जी की यह शिकायत बेवजह नहीं लगती कि गुलेरी जी ने अपेक्षा के अनुरूप नहीं लिखा अर्थात कम लिखा। ध्यान देने योग्य तथ्य यहाँ यह है कि केवल 39 वर्ष की थोड़ी-सी उम्र में उन्होंने जितना कुछ लिखा वह इतना स्वल्प भी नहीं है कि गुलेरी जी का मूल्याँकन केवल अनुमान या संभावना के आधार पर किया जाए।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि –

- हिन्दी साहित्य के संपूर्ण इतिहास में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यिक प्रतिभा क्या है?
- ''उसने कहा था'' कहानी का क्या महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन श्रेणीबद्ध तरीकों से कर सकेंगे।

4.3 जीवनी/व्यक्तित्व

मूलतः हिमाचल प्रदेश के गुलेर गाँव के वासी ज्योतिर्विद महामहोपाध्याय पंडित शिवराम शास्त्री राजसम्मान पाकर जयपुर (राजस्थान) में बस गए थे। उनकी तीसरी पत्नी लक्ष्मीदेवी ने सन् 1883 में चन्द्रधर को जन्म दिया। घर में बालक को संस्कृत भाषा, वेद, पुराण आदि के अध्ययन, पूजा-पाठ, संध्या-वंदन तथा धार्मिक कर्मकाण्ड का वातावरण मिला और मेधावी चन्द्रधर ने इन सभी संस्कारों और विद्याओं को आत्मसात् किया। आगे चलकर उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. (प्रथम श्रेणी में और प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए. (प्रथम श्रेणी में) करने के बाद चाहते हुए भी वे आगे की पढ़ाई परिस्थितिवश जारी न रख पाए। हालाँकि उनके स्वाध्याय और लेखन का क्रम अबाध रूप से चलता रहा। बीस वर्ष की उम्र के पहले ही उन्हें जयपुर की वेधशाला के जीर्णोद्धार तथा उससे सम्बन्धित शोधकार्य के लिए गठित मण्डल में चुन लिया गया था और कैप्टन गैरेट के साथ मिलकर उन्होंने ''जयपुर ऑब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स'' शीर्षक अँग्रेजी ग्रन्थ की रचना की।

अपने अध्ययन काल में ही उन्होंने सन् 1900 में जयपुर में नगरी मंच की स्थापना में योग दिया और सन् 1902 से मासिक पत्र 'समालोचक' के सम्पादन का भार भी सँभाला। प्रसंगवश कुछ वर्ष काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादक मंडल में भी उन्हें सम्मिलित किया गया। उन्होंने देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला और सूर्य कुमारी पुस्तकमाला का सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने नागरी प्रचारिणी पुस्तकमाला का सम्पादन किया। वे नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति भी रहे।

जयपुर के राजपण्डित के कुल में जन्म लेनेवाले गुलेरी जी का राजवंशों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। वे पहले खेतड़ी नरेश जयसिंह के और फिर जयपुर राज्य के सामन्त-पुत्रों के अजमेर के मेयो कॉलेज में अध्ययन के दौरान उनके अभिभावक रहे। सन् 1916 में उन्होंने मेयो कॉलेज में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष का पद सँभाला। सन् 1920 में पं. मदन मोहन मालवीय के आग्रह के कारण उन्होंने बनारस आकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या विभाग के प्राचार्य और फिर 1922 में प्राचीन इतिहास और धर्म से सम्बद्ध मनीन्द्र चन्द्र नन्दी पीठ के आचार्य का कार्यभार भी ग्रहण किया। इस बीच परिवार में अनेक दुखद घटनाओं के आघात भी उन्हें झेलने पड़े। सन् 1922 में 12 सितम्बर को पीलिया के बाद तेज बुख़ार से मात्र 39 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया।

4.3.1 कृतित्व – वस्तु पक्ष

इस थोड़ी-सी आयु में ही गुलेरी जी ने अध्ययन और स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी और अँग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, बांग्ला, मराठी आदि का ही नहीं जर्मन तथा फ्रेंच भाषाओं का भी ज्ञान हासिल किया था। उनकी रुचि का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था और धर्म, ज्योतिष इतिहास, पुरातत्त्व, दर्शन भाषाविज्ञान शिक्षाशास्त्र और साहित्य से लेकर संगीत, चित्रकला, लोककला, विज्ञान और राजनीति तथा समसामयिक सामाजिक स्थिति तथा रीति-नीति तक फैला हुआ था। उनकी अभिरुचि और सोच को गढ़ने में स्पष्ट ही इस विस्तृत पटभूमि का प्रमुख हाथ था और इसका परिचय उनके लेखन की विषयवस्तु और उनके दृष्टिकोण में बराबर मिलता रहता है।

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साथ एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि उनके अध्ययन, ज्ञान और रुचि का क्षेत्र हालाँकि बेहद विस्तृत था और उनकी प्रतिभा का प्रसार भी अनेक कृतियों, कृतिरूपों और विधाओं में हुआ था, किन्तु आम हिन्दी पाठक ही नहीं, विद्वानों का एक बड़ा वर्ग भी उन्हें अमर कहानी 'उसने कहा था' के रचनाकार के रूप में ही पहचानता है। इस कहानी की प्रखर चकाचौंध ने उनके बाकी वैविध्य भरे सशक्त कृति संसार को मानों ग्रस लिया है। प्राचीन साहित्य, संस्कृति, हिन्दी भाषा, समकालीन समाज, राजनीति आदि विषयों से जुड़ी इनकी विद्वता का जिक्र यदा-कदा होता रहता है, पर 'कछुआ धरम' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' जैसे एक दो निबन्धों और पुरानी हिन्दी जैसी लेखमाला के उल्लेख को छोड़कर उस विद्वता की बानगी आम पाठक तक शायद ही पहुँची हो। व्यापक हिन्दी समाज उनकी प्रकाण्ड विद्वता और सर्जनात्मक प्रतिभा से लगभग अनजान है।

अपने 39 वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में गुलेरी जी ने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना तो नहीं कि किन्तु फुटकर रूप में बहुत लिखा, अनगिनत विषयों पर लिखा और अनेक विधाओं की विशेषताओं और रूपों को समेटते-समंजित करते हुए लिखा। उनके लेखन का एक बड़ा हिस्सा जहाँ विशुद्ध अकादमिक अथवा शोधपरक है, उनकी शास्त्रज्ञता तथा पाण्डित्य का परिचायक है; वहीं, उससे भी बड़ा हिस्सा उनके खुले दिमाग, मानवतावादी दृष्टि और समकालीन समाज, धर्म राजनीति आदि से गहन सरोकार का परिचय देता है। लोक से यह सरोकार उनकी 'पुरानी हिन्दी' जैसी अकादमिक और 'महर्षि च्यवन का रामायण' जैसी शोधपरक रचनाओं तक में दिखाई देता है। इन बातों के अतिरिक्त गुलेरी जी के विचारों की आधुनिकता भी हमसे आज उनके पुनराविष्कार की माँग करती है।

विषय-वस्तु की व्यापकता की दृष्टि से गुलेरी जी का लेखन धर्म पुरातत्त्व, इतिहास और भाषाशास्त्र जैसे गम्भीर विषयों से लेकर 'काशी की नींद' जैसे हलके-फुलके विषयों तक को समान भाव से समेटता है। विषयों का

इतना वैविध्य लेखक के अध्ययन, अभिरुचि और ज्ञान के विस्तार की गवाही देता है, तो हर विषय पर इतनी गहराई से समकालीन परिप्रेक्ष्य में विचार अपने समय और नए विचारों के प्रति उसकी सजगता को रेखांकित करता है। राज ज्योतिषी के परिवार में जन्मे, हिन्दू धर्म के तमाम कर्मकाण्डों में विधिवत् दीक्षित, त्रिपुण्डधारी निष्ठावान ब्राह्मण की छवि से यह रूढ़िभंजक यथार्थ शायद मेल नहीं खाता, मगर उस सामाजिक-राजनीतिक-साहित्यिक उत्तेजना के काल में उनका प्रतिगामी रुढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाना स्वाभाविक ही था। यह याद रखना जरूरी है कि वे रूढ़ियों के विरोध के नाम पर केवल आँख मूँदकर तलवार नहीं भाँजते। खण्डन के साथ ही वे उचित और उपयुक्त का मंडन भी करते हैं। किन्तु धर्म, समाज, राजनीति और साहित्य में उन्हें जहाँ कहीं भी पाखण्ड या अनौचित्य नजर आता है, उस पर वे जमकर प्रहार करते हैं। इस क्रम में उनकी वैचारिक पारदर्शिता, गहराई और दूरदर्शिता इसी बात से सिद्ध है कि उनके उठाए हुए अधिकतर मुद्दे और उनकी आलोचना आज भी प्रासंगिक हैं।

उनके लेखन की रोचकता उसकी प्रासंगिकता के अतिरिक्त उसकी प्रस्तुति की अनोखी भंगिमा में भी निहित है। उस युग के कई अन्य निबन्धकारों की तरह गुलेरी जी के लेखन में भी मस्ती तथा विनोद भाव की एक अन्तर्धारा लगातार प्रवाहित होती रहती है। धर्मसिद्धान्त, आध्यात्म आदि जैसे कुछ एक गम्भीर विषयों को छोड़कर लगभग हर विषय के लेखन में यह विनोद भाव प्रसंगों के चुनाव में, भाषा के मुहावरों में, उद्धरणों और उक्तियों में बराबर झंकृत रहता है। जहाँ आलोचना कुछ अधिक भेदक होती है, वहाँ यह विनोद व्यंग्य में बदल जाता है-जैसे शिक्षा, सामाजिक रूढ़ियों तथा राजनीति सम्बन्धी लेखों में। इससे गुलेरी जी की रचनाएँ कभी गुदगुदाकर, कभी झकझोरकर पाठक की रुचि को बाँधे रहती हैं।

मात्र 39 वर्ष की जीवन-अवधि को देखते हुए गुलेरी जी के लेखन का परिमाण और उनकी विषय-वस्तु तथा विधाओं का वैविध्य सचमुच विस्मयकर है। उनकी रचनाओं में कहानियाँ, कथाएँ, आख्यान, ललित निबन्ध, गम्भीर विषयों पर विवेचनात्मक निबन्ध, शोधपत्र, समीक्षाएँ, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, पत्र विधा में लिखी टिप्पणियाँ, समकालीन साहित्य- समाज, राजनीति, धर्म, विज्ञान, कला आदि पर लेख तथा वक्तव्य, वैदिक-पौराणिक साहित्य, पुरातत्त्व, भाषा आदि पर प्रबन्ध, लेख तथा टिप्पणियाँ-सभी शामिल हैं।

4.3.2 भाषा शैली

गुलेरी जी की शैली मुख्यतः वार्तालाप की शैली है जहाँ वे किस्साबयानी के लहज़े में मानों सीधे पाठक से मुख़ातिब होते हैं। यह साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली को सँवरने का काल था। अतः शब्दावली और प्रयोगों के स्तर पर सामन्जस्य और परिमार्जन की कहीं-कहीं कमी भी नजर आती है। कहीं वे 'पृश्णि', 'क्लृप्ति' और 'आग्मीघ्र' जैसे अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं तो कहीं 'बेर', 'बिछोड़ा' और 'पैंड़' जैसे ठेठ लोकभाषा के शब्दों का। अंग्रेजी, अरबी-फारसी आदि के शब्द ही नहीं पूरे-के-पूरे मुहावरे भी उनके लेखन में तत्सम या अनूदित रूप में चले आते हैं। भाषा के इस मिले-जुले रूप और बातचीत के लहजे से उनके लेखन में एक अनौपचारिकता और आत्मीयता भी आ गई है। हाँ गुलेरी जी अपने लेखन में उद्धरण और उदाहरण बहुत देते हैं। इन उद्धरणों और उदाहरणों

से आमतौर पर उनका कथ्य और अधिक स्पष्ट तथा रोचक हो उठता है पर कई जगह यह पाठक से उदाहरण की पृष्ठभूमि और प्रसंग के ज्ञान की माँग भी करता है। आम पाठक से प्राचीन भारतीय वाङ्मय, पश्चिमी साहित्य, इतिहास आदि के इतने ज्ञान की अपेक्षा करना ही गलत है। इसलिए यह अतिरिक्त 'प्रसंगगर्भत्व' उनके लेखन के सहज रसास्वाद में कहीं-कहीं अवश्य ही बाधक होता है।

गुलेरी की कहानी कुशलता का रहस्य यह है कि वह दुःख के तह तक जाकर दर्द की पड़ताल करते हैं। जिसका उदाहरण निम्नलिखित है- **रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।**

"वजीरा सिंह, पानी पिला" ... 'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, 'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

बहरहाल गुलेरी जी की अभिव्यक्ति में कहीं भी जो भी कमियाँ रही हों, हिन्दी भाषा और शब्दावली के विकास में उनके सकारात्मक योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे खड़ी बोली का प्रयोग अनेक विषयों और अनेक प्रसंगों में कर रहे थे-शायद किसी भी अन्य समकालीन विद्वान से कहीं बढ़कर। साहित्य पुराण-प्रसंग इतिहास, विज्ञान, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों की वाहक उनकी भाषा स्वाभाविक रूप से ही अनेक प्रयुक्तियों और शैलियों के लिए गुंजाइश बना रही थी। वह विभिन्न विषयों को अभिव्यक्त करने में हिन्दी की सक्षमता का जीवन्त प्रमाण है। हर सन्दर्भ में उनकी भाषा आत्मीय तथा सजीव रहती है, भले ही कहीं-कहीं वह अधिक जटिल या अधिक हल्की क्यों न हो जाती हो। गुलेरी जी की भाषा और शैली उनके विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं थी। वह युग-सन्धि पर खड़े एक विवेकी मानस का और उस युग की मानसिकता का भी प्रामाणिक दस्तावेज है। इसी ओर इंगित करते हुए प्रो. नामवर सिंह का भी कहना है, ''गुलेरी जी हिन्दी में सिर्फ एक नया गद्य या नयी शैली नहीं गढ़ रहे थे बल्कि वे वस्तुतः एक नयी चेतना का निर्माण कर रहे थे और यह नया गद्य नयी चेतना का सर्जनात्मक साधन है।''

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. उसने कहा था का प्रकाशन वर्ष.....है।
2. गुलेरी जी ने.....पत्र का प्रकाशन किया।
3. .....उसने कहा था का नायक है।
4. .....उसने कहा था की नायिका है।
5. उसने कहा था कि पृष्ठभूमि.....प्रान्त की है।

4.4 उसने कहा था: परिचय

हिन्दी के निराले आराधक श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की बेजोड़ कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। यों तो हिन्दी की पहली कहानी के रूप में इंशा अल्ला खां की कहानी 'रानी केतकी की कहानी' किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' और बंग महिला की 'दुलाई वाली' का नाम लिया जाता है। मगर कहानी की कसौटी पर खरा उतरने के कारण 'उसने कहा था' कहानी को ही हिंदी की पहली कहानी होने का गौरव प्राप्त है। हमारे यहाँ प्रेम पद्धति में पुरुष प्रेम का प्रस्ताव करता है और स्त्री स्वीकृति देकर उसे कृतकृत्य बनाती है। इस क्रिया व्यापार में नारी अपनी सलज्जता और गरिमा बनाए रखती है और पुरुष उसे संरक्षण देने में पौरुष की अनुभूति करता है। पुरुष के इसी पौरुषपूर्ण साहसिक प्रयत्न की ओर ही बहुधा नारी आकर्षित होती है। श्री चंद्रशेखर शर्मा गुलेरी जी ने भारतीय प्रेम पद्धति के परंपरागत रूप को 'उसने कहा था' कहानी में अक्षुण्ण बनाए रखा है। इस कहानी में प्रेम का स्वरूप किशोरावस्था के प्रथम दर्शन से आरंभ होकर क्रमशः विकसित होकर संयोगावस्था में पूर्णता न प्राप्त कर वियोगावस्था (त्रासदी) में पूर्ण होता है। अमृतसर के बाजार में एक लड़का और लड़की मिलते हैं। लड़का लड़की से पहला सवाल करता है, 'तेरी कुड़माई हो गयी?' और लड़की के नकारात्मक उत्तर पर प्रसन्न हो दूसरे-तीसरे दिन भी यह प्रश्न दोहरा देता है, पर यकायक एक दिन उम्मीद के विपरीत जब लड़के को पता चलता है कि उसकी कुड़माई हो गयी है तो वह इस अप्रत्याशित जवाब से क्षुब्ध हो कई ऊल-जुलूल काम कर बैठता है। तीव्र मन से लहना सिंह आघात महसूसते हुए क्या-क्या सोचने-करने लगता है, निज चेतन एवं उपचेतन तथा अचेतन मन की विभिन्न परतों को खोल देने वाला वर्णन गुलेरी जी ने 20वीं सदी के शुरुआती काल में किया है, वह सचमुच इंसानी मन के चेतन उप-चेतन तथा अचेतन मन की विभिन्न परतों को खोल देने वाला ही है। गुलेरी जी के चरित्र चित्रण की ऐसी अनूठी मनोवैज्ञानिकता से पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है। लहना सिंह अपने बचपन के प्रेम को पच्चीस साल बाद भी भुला नहीं पाता, तब लगता है सूरदास के 'लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटत' वाली उक्त अक्षरशः सत्यापित होती है। संभवतः ऐसे अनूठे भावों के सुंदर सुदृढ़ गुंफन के कारण 'उसने कहा था' कहानी ख्याति स्तंभ कहानी बन गयी और हिन्दी के समूचे कहानी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। इस कहानी में शाश्वत मानव मनोभाव कथ्य का आधार बने हैं।

4.5 कहानी की विशेषता

कहानी की विशेषता यह है कि आम पाठक जिज्ञासु बनकर घटनाओं के प्रति उत्सुक बना रहता है। ''किसने कहा था'', ''क्या कहा था'' और ''क्यों कहा था''। यही तो कहानी के मूल तथ्य से जुड़ा दुर्लभ संवेदन है जो घटनाचक्र के साथ पाठक को दृढ़ता से जोड़े रखता है और उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति को विकसित करता है। बेशक, इस कहानी में दूसरे और पात्र भी हैं, मगर कथ्य की मूल आत्मा केवल लहना सिंह और सूबेदारनी में ही अधिक संवेदित दिखायी देती है। दोनों के मध्य एक ऐसी प्रेम कहानी अपना ताना-बाना बुनती है, जो लहना सिंह के जीवन को आदर्शवादी मूल्यों का नशेमन (नीड़) बना देता है। एक ऐसा अनुपम पात्र जो देखने-सुनने एवं पढ़ने वालों के लिए अनुकरणीय और आदरणीय तो है ही आह्लादक भी लगता है और कहानी मानवीय शाश्वत भावों को प्रकाशित करने वाली कर्तव्य एवं त्याग (बलिदान) की कहानी सिद्ध होती है। इसमें नायक-नायिका (सूबेदारनी)के मधुर रागात्मक मिलन की क्षणिक चमक दोनों के संपूर्ण जीवन तथा व्यक्तित्व को आलोकित करती है - उसने कहा था ? इस कथन को युद्ध क्षेत्र में पड़ा लहना सिंह 25 वर्ष बीत जाने पर भी भूलता नहीं है। वरन् यह उसके लिए प्रेरक शक्ति सिद्ध होती है। उसके आत्मोत्सर्ग त्याग, बलिदान का कारण बनता है। एक मायने में लहना सिंह प्रेम के लिए ही बलिदान करता है।

देश और प्रेम के प्रति कर्तव्य की भावना 'उसने कहा था' कहानी की मूल थीम है। जीवन के अंतिम क्षण में 'कुड़माई' से लेकर 'उसने कहा था' तक तमाम स्मृतियाँ अपना आकार लेती हुई लहना सिंह की आँखों में सपना बनकर तैरती हैं। वजीरा सिंह उसे पानी पिलाता है... लहना सिंह को यों प्रतीत होता है मानों पानी के उस घूँट के साथ जुड़कर अतीत का प्रेम अपार सुख संतोष उसमें अपने आप भर गया हो। कर्तव्य बोध के शिकंजे में कसती जा रही घायल लहना सिंह की जिंदगी का एक-एक क्षण उत्सर्ग की भावना से ओत-प्रोत होकर सच्चे प्रेम का साक्ष्य बन जाता है। या यूं कहें कि घायल शरीर से रिस रहे उसके लहू की एक-एक बूंद सूबेदारनी की माँग के सिंदूर को धूमिल होने और आँचल के दूध को सूखने से बचाती है। अंतिम श्वास तक लहना सिंह की कर्तव्य परायणता जीवित रहती है और मरने के बाद उत्सर्ग से अनुप्राणित लहना सिंह का पावन प्रेम मंदिर की पूजा की भांति अत्यंत पावन बनकर लोकोत्तर आनंद एवं अप्रतिम सौंदर्य से दीप्तिमान हो उठता है। प्रेम की इस पवित्र परिणति में वासना की व्यग्रता तथा मादक चपलता से मुक्त लहना सिंह अमरत्व प्राप्त करता और इस तरह गुलेरी जी अविस्मरणीय बन जाते हैं।

''स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है।'' पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी। ''अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा-कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।"

दो शब्द कहानी की भाषा-शैली पर भी कहना आवश्यक है। ध्यातव्य है कि 1915 ई. में कहानीकार इतने परिनिष्ठित गद्य का स्वरूप उपस्थित कर सकता है जो बहुत बाद तक की कहानी में भी दुर्लभ है। यदि भाषा में कथा की

बयानी के लिए सहज चापल्य तथा जीवन-धर्मी गंध है तो चांदनी रात के वर्णन में एक गांभीर्य जहां चंद्रमा को क्षयी तथा हवा को बाणभट्ट की कादम्बरी में आये दन्तवीणोपदेशाचार्य की संज्ञा से परिचित कराया गया है। रोजमर्रा की बोलचाल के शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों तथा लोकगीत का प्रयोग भी कहानी को एक नयी धारा देता है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से "उसने कहा था" हिंदी ही नहीं, भारतीय भाषाओं की ही नहीं अपितु विश्व कहानी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। क्या लहना सिंह और बालिका के प्रेम को प्रेम-रसराज श्रृंगार की सीमा का स्त्री-पुरुष के बीच जन्मा प्रेम कहा भी जा सकता है? मृत्यु के कुछ समय पहले लहना सिंह के मानस-पटल पर स्मृतियों की जो रील चल रही है उससे ज्ञात होता है कि अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों पर जब बालक लहना सिंह और बालिका (सूबेदारनी) मिलते हैं तो लहना सिंह की उम्र बारह वर्ष है और बालिका की आठ वर्ष। ध्यातव्य है कि 1914-15 ई. का हमारा सामाजिक परिवेश ऐसा नहीं था जैसा आज का। आज के बालक-बालिका रेडियो, टी.वी. तथा अन्य प्रचार माध्यमों और उनके द्वारा परिवार-नियोजन के लिए चलायी जा रही मुहिम से यौन-संबंधों की जो जानकारी रखते हैं, उस समय उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह वह समय था जब अधिकतर युवाओं को स्त्री-पुरुष संबंधों का सही ज्ञान नहीं होता था। ऐसे समय में अपने मामा के यहां आया लड़का एक ही महीने में केवल दूसरे-तीसरे दिन कभी सब्जी वाले या दूध वाले के यहां उस बालिका से अकस्मात मिल जाता है तो यह साहचर्यजन्य सहज प्रीति उस प्रेम की संज्ञा तो नहीं पा सकती जिसका स्थायी भाव रति है। इसे बालपन की सहज प्रीति ही कहा जा सकता है जिसका पच्चीस वर्षो के समय तक शिथिल न पडने वाला वह तार यह संवाद है तेरी कुडमाई हो गई? और उत्तर का भोला धृष्ट धत् है। किंतु एक दिन धत् न सुन कर जब बालक लहना सिंह संभावना, आशा के विपरीत यह सुनता है हां, हो गई, कब?, कल, देखते नहीं यह रेशम से कढा हुआ सालू! तो उसकी दुनिया में उथल-पुथल मच जाती है, मानो उसके भाव जगत में एक तूफान आ जाता है, आग-सी लग जाती है।

गुलेरी की कहानी-कला अपने समय इस कहानी-कला से आगे की है। गुलेरी पर भी अपने समय का प्रभाव है-उसकी प्रचलित रूढ़ियों का साफ प्रभाव उनकी पहली कहानी ''सुखमय जीवन'' पर है। यह कहानी वैसी ही है जैसी उस दौर की अन्य कहानियां हैं। यह कहानी नहीं, वृत्तांत भर है-इसमें शिल्प और तकनीक का कोई मौलिक नवोन्मेष नहीं है। लेकिन उन्होंने अपनी अगली कहानी ''उसने कहा था'' में अपने समय को बहुत पीछे छोड़ दिया है। शिल्प और तकनीक का जो उत्कर्ष प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतिम चरण में 1936 ई. के आसपास ''कफन'' और ''पूस की रात'' में अर्जित की, गुलेरी ने इस कहानी में उसे 1915 ई. में ही साध लिया। यह यों ही संभव नहीं हुआ। इसे संभव किया गुलेरी के असाधारण व्यक्तित्व ने। गुलेरी 1915 ई में महज 32 वर्ष के थे। युवा होने के कारण उनमें नवाचार का साहस था। उम्र-दराज आदमी जिस तरह की दुविधाओं और संकोचों से घिर जाता है, गुलेरी उनसे सर्वथा मुक्त थे। अंग्रेजी कहानी इस समय अपने विकास के शिखर पर थी और उसमें प्रयोगों की भी धूम थी, जिनसे गुलेरी बखूबी वाकिफ थे। कम लोगों को जानकारी है कि गुलेरी उपनिवेशकाल में अंग्रेजों द्वारा सामंतों की शिक्षा के लिए अजमेर में स्थापित विख्यात आधुनिक शिक्षण संस्थान मेयो कॉलेज में अध्यापक थे और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के अच्छे जानकार थे। दरअसल नवाचार के साहस और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य की विशेषज्ञता के कारण ही गुलेरी अपने समय से आगे की कहानी लिख पाए। गुलेरी के कौतुहलपूर्ण कथोपकथन से कहानी की प्राण प्रतिष्ठा और भी शास्त्रोक्त हो जाती है-

'तेरे घर कहाँ है?'
'मगरे में; और तेरे?'
'माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?'
'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'
'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में हैं।'
इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकराकार पूछा, ''तेरी कुड़माई हो गई?''
इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

4.6 सारांश

''उसने कहा था'' का कथा-विन्यास अत्यंत विराट फलक पर किया गया है। कहानी जीवन के किसी प्रसंग विशेष, समस्या विशेष या चरित्र की किसी एक विशेषता को ही प्रकाशित करती है, उसके संक्षिप्त कलेवर में इससे अधिक की गुंजाइश नहीं होती है। किंतु यह कहानी लहना सिंह के चारित्रिक विकास में उसकी अनेक विशेषताओं को प्रकाशित करती हुई उसका संपूर्ण जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती है, बारह वर्ष की अवस्था से लेकर प्रायः सैंतीस वर्ष, उसकी मृत्युपर्यत, तक की कथा-नायक का संपूर्ण जीवन इस रूप में चित्रित होता है कि कहानी अपनी परंपरागत रूप-पद्धति (फॉर्म) को चुनौती देकर एक महाकाव्यात्मक औदात्य लिये हुए है। वस्तुत: पांच खण्डों में कसावट से बुनी गयी यह कहानी सहज ही औपन्यासिक विस्तार से युक्त है किंतु अपनी कहन की कुशलता से कहानीकार इसे एक कहानी ही बनाये रखता है। दूसरे, तीसरे और चौखे खण्ड में विवेच्य कहानी में युद्ध-कला, सैन्य-विज्ञान (क्राफ्ट ऑफ वार) और खंदकों में सिपाहियों के रहने-सहने के ढंग का जितना प्रामाणिक, सूक्ष्म तथा जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है, वैसा हिंदी कथा-साहित्य में विरल है। लहना सिंह जैसे सीधे-साधे सिपाही, जमादार लहना सिंह की प्रत्युपन्नमति, कार्य करने की फुर्ती, संकट के समय अपने साथियों का नेतृत्व, जर्मन लपटैन (लेफ्टिनेंट) को बातों-बातों में बुद्धू बना कर उसकी असलियत जान लेना, यदि एक ओर इस चरित्र को इस सबसे विकास मिलता है तो दूसरी ओर पाठक इस रोचक-वर्णन में खो-सा जाता है। भाई कीरत सिंह की गोद में सिर रख कर प्राण त्यागने की इच्छा, वजीरा सिंह को कीरत सिंह समझने में लहना सिंह एक त्रासद प्रभाव पाठक को देता है। मृत्यु से पूर्व का यह सारा दृश्यविधान अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। वातावरण का अत्यंत गहरे रंगों में सृजन गुलेरी जी की अपनी विशेषता है। कहानी का प्रारंभ अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों और गहमागहमी से होता है, युद्ध के मोर्चे पर खाली पडे फौजी घर, खंदक का वातावरण, युद्ध के पैंतरे इन सबके चित्र अंकित करता हुआ कहानीकार इस स्वाभाविक रूप में वातावरण की सृष्टि करता है कि वह हमारी चेतना, संवेदना का अंग ही बन जाता है।

4.7 शब्दावली

1. नवाचार - नवीन विचार
2. चापल्य - चंचलता
3. पटभूमि - पृष्ठभूमि

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. 1915

2. समालोचक

3. लहना सिंह

4. सूबेदारनी

5. पंजाब

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।
2. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी कुशलता का शास्त्रीय विवेचन करें।
2. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें।
3. ''उसने कहा था'' कहानी की सफलता को अपने शब्दों में व्यख्यायित करें।

इकाई 5 उसने कहा था : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मूलपाठ
5.4 मूल्यांकन
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध एवं कालजयी कहानी ''उसने कहा था'' के मूलपाठ का अध्ययन किया जा रहा है। यह कहानी अपने काल के साथ-साथ युवा होती गयी है। सन् 1915 में प्रकाशित यह कहानी साहित्याकाश में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। गुलेरी जी की साहित्य साधना ''उसने कहा था'' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। प्रथम-दृष्टि-प्रेम तथा साहचर्यजन्य प्रेम दोनों का ही इस प्रेमोदय में सहकार है। बालापन की यह प्रीति इतना अगाध विश्वास लिए है कि 25 वर्षों के अंतराल के पश्चात भी प्रेमिका को यह विश्वास है कि यदि

वह अपने उस प्रेमी से, जिसने बचपन में कई बार अपने प्राणों को संकट में डाल कर उसकी जान बचायी है, यदि आंचल पसार कर कुछ मांगेगी तो वह मिलेगा अवश्य; और दूसरी ओर प्रेमी का "उसने कहा था" की बात रखने के लिए प्राण न्योछावर कर वचन निभाना उसके अद्भुत बलिदान और प्रेम पर सर्वस्व अर्पित करने की एक बेमिसाल कहानी है।

5.2 उद्देश्य

- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कालजयी कहानी ''उसने कहा था'' का मूलपाठ से आप परिचित होंगे।
- ''उसने कहा था'' कहानी की समीक्षा आप कर सकेंगे।
- कहानी के तत्वों से आप परिचित हो सकेंगे।
- पंजाबी पृष्ठभूमि का ज्ञान आप प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

5.3 मूलपाठ

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़िवालों की जवान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगाएँ। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरे को चींघकर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी।' 'हटो भाई जी। 'ठहरना भाई जी। ''आने दो लाला जी।" 'हटो बाछा।' -- कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्नें और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई।

यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं - 'हट जा जीणे जोगिए'; 'हट जा करमा वालिए'; 'हट जा पुतां प्यारिए'; 'बच जा लम्बी वालिए।' समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेसी से गुँथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ है?'

'मगरे में; और तेरे?'

'माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में हैं।'

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकराकार पूछा, ''तेरी कुड़माई हो गई?''

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली, ''हाँ हो गई।''

''कब?''

''कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।''

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

''राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बर्फ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ज़मीन कहीं दिखती नहीं; - घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।''

''लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में - मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।''

''चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े - संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था - चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो...''

''नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते! क्यों?'' सूबेदार हज़ारसिंह ने मुसकराकर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गए तो क्या होगा?''

''सूबेदार जी, सच है,'लहनासिंह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।''

''उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंकों। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदल ले।'' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, ''मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!'' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा, ''अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।''

''हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस धुमा ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।''

''लाड़ी होरा को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम...''

''चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।''

''देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं।''

''अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है?''

''अच्छा है।''

''जैसे मैं जानता ही न होऊँ ! रात-भर तुम अपने कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।''

''मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सीर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।''

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा, ''क्या मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयों, कैसे?''

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगां दा बपार मडिए;
कर लेणा नादेड़ा सौदा अड़िए -
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुँ।
क बणाया वे मज़ेदार गोरिये,
हुण लाणा चटाका कदुए नुँ।।

कौन जानता था कि दाढ़ियावाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

दोपहर रात गई है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

''क्यों बोधा भाई, क्या है?''

''पानी पिला दो।''

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा, 'कहो कैसे हो? ''पानी पी कर बोधा बोला, कँपनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।''

''अच्छा, मेरी जरसी पहन लो!''

''और तुम?''

''मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।''

''ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए...''

''हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन-बुनकर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।'' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

''सच कहते हो?''

''और नहीं झूठ?'' यों कह कर नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन-कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई, ''सूबेदार हज़ारासिंह।''

''कौन लपटन साहब? हुक्म हुजूर!'' कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

''देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।''

''जो हुक्म।''

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज़्ज़त हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा, 'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला, 'लाओ साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए?'

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हमलोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे?'

'लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे -

हाँ-हाँ -वहीं जब आप खोते पर सवार थे और और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ने को रह गया था? बेशक पाजी कहीं का - सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजमेंट की मैस में लगाएँगे। हाँ पर मैंने वह विलायत भेज दिया - ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?'

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ' कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरसिंह?'

'हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? ज़रा तो आँख लगने दी होती?'

'होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।'
'क्या?'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सोहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है?'
'तो अब!'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरा, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।

सूबेदार से कहो एकदम लौट आयें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'
'हुकुम तो यह है कि यहीं-'

'ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम... जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।'
'पर यहाँ तो तुम आठ है।'
'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दुक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला, 'क्यों लपटन साहब? मिजाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं।

और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिन 'डेम' के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, 'चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महिने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो...'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया, 'क्या है?'

लहनासिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था - वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनिटों में वे...

अचानक आवाज़ आई 'वाहे गुरु जी की फतह? वाहे गुरु जी का खालसा!!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हज़ारसिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और... 'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाहे गुरु जी दी फतह! वाहे गुरु जी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुख!!!' और लड़ाई ख़तम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को ख़बर न हुई कि लहना को दूसरा घाव - भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी वाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और काग़ज़ात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाडियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा, 'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'
'अच्छा, पर...'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा, 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'
'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'
गाड़ी के जाते लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनायें एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं। समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा, 'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू" सुनते ही लहनासिंह को दुरूख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न-मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिठ्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिठ्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढे में से निकल कर आया। बोला, 'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जा कर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

''तेरी कुड़माई हो गई -धत् -कल हो गई- देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू -अमृतसर में -"
भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।
''वजीरा, पानी पिला।" 'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी।
''अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था।

तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा-कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।"

रोती -रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

‘‘वजीरा सिंह, पानी पिला" ... ‘उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, ‘कौन! कीरतसिंह?‘

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, ‘हाँ।'

‘भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे ही किया।

‘हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अख़बारों में पढ़ा... फ्रान्स और बेलजियम... 68 वीं सूची... मैदान में घावों से मरा... नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश : सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. उसने कहा था का प्रकाशन सन् 1915 में हुआ था।
2. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन किया था।
3. ‘पुरानी हिंदी’ के लेखक गुलेरी जी हैं।
4. उसने कहा था की पृष्ठभूमि पंजाब प्रान्त से जुड़ी हुई है।
5. गुलेरी जी को कई भाषाओं का ज्ञान था।

5.4 मूल्यांकन

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने "उसने कहा था" कहानी की रचना कर न केवल हिंदी कहानी अपितु विश्व कथा-साहित्य को समृद्ध किया है। वास्तविकता यह है कि उनकी प्रसिद्धि "उसने कहा था" के द्वारा ही हुई। "उसने कहा था" प्रेम, शौर्य और बलिदान की अद्भुत प्रेम-कथा है। प्रथम विश्व युद्ध के समय में लिखी गयी यह प्रेम कथा कई मायनों में अप्रतिम है। प्रथम-दृष्टि-प्रेम तथा साहचर्यजन्य प्रेम दोनों का ही इस प्रेमोदय में सहकार है। बालापन की यह प्रीति इतना अगाध विश्वास लिए है कि 25 वर्षो के अंतराल के पश्चात भी प्रेमिका को यह विश्वास है कि यदि वह अपने उस प्रेमी से, जिसने बचपन में कई बार अपने प्राणों को संकट में डाल कर उसकी जान बचायी है, यदि आंचल पसार कर कुछ मांगेगी तो वह मिलेगा अवश्य। "उसने कहा था" का कथा-विन्यास अत्यंत विराट फलक पर किया गया है। कहानी जीवन के किसी प्रसंग विशेष, समस्या विशेष या चरित्र की किसी एक विशेषता को ही प्रकाशित करती है, उसके संक्षिप्त कलेवर में इससे अधिक की गुंजाइश नहीं होती है। किंतु यह कहानी लहना सिंह के चारित्रिक विकास में उसकी अनेक विशेषताओं को प्रकाशित करती हुई उसका संपूर्ण जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती है, बारह वर्ष की अवस्था से लेकर प्रायः सैंतीस वर्ष, उसकी मृत्युपर्यंत, तक की कथा-नायक का संपूर्ण जीवन इस रूप में चित्रित होता है कि कहानी अपनी परंपरागत रूप-पद्धति (फॉर्म) को चुनौती देकर एक महाकाव्यात्मक औदात्य लिये हुए है। वस्तुतः पांच खण्डों में कसावट से बुनी गयी यह कहानी सहज ही औपन्यासिक विस्तार से युक्त है किंतु अपनी कहन की कुशलता से कहानीकार इसे एक कहानी ही बनाये रखता है। दूसरे, तीसरे और चौखे खण्ड में विवेच्य कहानी में युद्ध-कला, सैन्य-विज्ञान (क्राफ्ट ऑफ वार) और खंदकों में सिपाहियों के रहने-सहने के ढंग का जितना प्रामाणिक, सूक्ष्म तथा जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है, वैसा हिंदी कथा-साहित्य में विरल है।

लहना सिंह जैसे सीधे-साधे सिपाही, जमादार लहना सिंह की प्रत्युपन्नमति, कार्य करने की फुर्ती, संकट के समय अपने साथियों का नेतृत्व, जर्मन लपटैन (लेफ्टिनेंट) को बातों-बातों में बुद्धू बना कर उसकी असलियत जान लेना, यदि एक ओर इस चरित्र को इस सबसे विकास मिलता है तो दूसरी ओर पाठक इस रोचक-वर्णन में खो-सा जाता है। भाई कीरत सिंह की गोद में सिर रख कर प्राण त्यागने की इच्छा, वजीरा सिंह को कीरत सिंह समझने में लहना सिंह एक त्रासद प्रभाव पाठक को देता है। मृत्यु से पूर्व का यह सारा दृश्यविधान अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है।

वातावरण का अत्यंत गहरे रंगों में सृजन गुलेरी जी की अपनी विशेषता है। कहानी का प्रारंभ अमृतसर की भीड़-भरी सड़कों और गहमागहमी से होता है, युद्ध के मोर्चे पर खाली पड़े फौजी घर, खंदक का वातावरण, युद्ध के पैंतरे इन सबके चित्र अंकित करता हुआ कहानीकार इस स्वाभाविक रूप में वातावरण की सृष्टि करता है कि वह हमारी चेतना, संवेदना का अंग ही बन जाता है।

5.5 सारांश

यह देशज वातावरण से ओतप्रोत कहानी चंद्रधर शर्मा की अनुपम कृति सिद्ध हुई है। इस कहानी ने देशप्रेम के साथ-साथ प्रेयसी के प्रति प्रतिबद्धता का अनूठा संगम है। देश की रक्षा के साथ प्रेम के निशानी की रक्षा करने की अतुलनीय सीख यह कहानी देती है। कहानी में कौतूहलता, संघर्ष एवं दुःखान्त है। कहानी को पढ़कर पाठक का निश्चित ही हृदय पसीज जाता है। इस कहानी को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके होंगे कि –

- कहानी कहने की शैली
- आदर्श प्रेम के लिए त्याग
- राष्ट्रप्रेम के लिए प्राणोत्तसर्ग की भावना
- युद्ध कालीन परिस्थितियों का ध्यान
- पंजाबी लोक रीति का ज्ञान

5.6 शब्दावली

1.	बम्बूकार्ट	-	रंगरूट
2.	कुड़माई	-	शादी
3.	बर्रा	-	आग की गर्मी
4.	गंदला	-	गंदा

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, विजय पाल, सं0, कथा एकादशी।
2. शुक्ल, रामचन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कहानी ‘‘उसने कहा था’’ का अभिप्राय अपने शब्दों में लिखिये।
2. लहनासिंह का चरित्र चित्रण कीजिये।
3. ‘‘उसने कहा था’’ की भाषा शैली पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 6 कफन: पाठ एवं विवेचन

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 प्रेमचंद की कहानियों का स्वर और कफन
6.4 कफन : मूल पाठ
6.5 कफन: विवेचन
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.10 सहायक पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण कहानीकार प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी कफ़न का पाठ एवम् विवेचन करेंगे।

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कहानी का स्वर स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कहानी से भिन्न रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी कहानी की विकास यात्रा पर्याप्त समृद्ध रही है। प्रेमचंद इस दौर के सर्वाधिक बड़े लेखक हैं। लेकिन प्रेमचंद से पूर्व आधुनिक हिंदी कहानियों की शुरुआत हो चुकी थी। किशोरीलाल गोस्वामी, लाला भगवान दीन, बंग महिला, रामचंद्र शुक्ल आदि की कहानियां तो प्रकाशित हो ही चुकी थीं। किंतु इसके अतिरिक्त चंद्रधर शर्मा गुलेरी व जयशंकर प्रसाद की कहानियां भी अपने समय में किसी उपलब्धि से कम नहीं हैं। लेकिन इस समय की केंद्रीय धुरी प्रेमचंद की कहानियां बनती हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन, किसान समस्या व सामान्य जनता की बुनियादी समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। प्रेमचंद अपने समय की प्रमुख समस्याओं से टकराते हैं तथा उसं पर अपने निष्कर्ष देते हैं। प्रेमचंद की कहानी शैली विशिष्ट थी। कई बार इसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा गया तो कई बार

हृदय परिवर्तन की कहानी। अर्थ यह था कि प्रेमचंद अपने समय की जनता की आशा -आकांक्षा को स्वर प्रदान कर रहे थे।

प्रेमचंद की कहानियों का स्वर आदर्श की प्रधानता से युक्त है। इसमें कफ़न कहानी का स्वर भिन्न है। कफ़न प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानी है। इस इकाई में हम कफन कहानी की मूल समस्या को उसके पाठ के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

6.2 उद्देश्य

कफ़न प्रेमचंद की प्रसिद्द कहानियों में से एक है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में तो प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी। इस इकाई में हम प्रेमचंद की प्रसिद्द कहानी कफ़न का पाठ एवं विवेचन करेंगे। अत: इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

कफ़न कहानी के कथ्य से परिचित हो सकेंगे।
कफ़न कहानी की पात्र योजना को समझ सकेंगे।
आधुनिक कहानी के स्वरुप से परिचित हो सकेंगे।
कहानी के भाषा -शिल्प से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 प्रेमचंद की कहानियों का स्वर व कफ़न

प्रेमचंद उर्दू व हिंदी के सर्वाधिक बड़े कहानिकारों में से एक है। प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियां उर्दू में छपी थीं। 1908 ई में प्रकाशित सोजे वतन कहानी संग्रह उर्दू में ही छपा था। इसके अतिरिक्त कुछ उपन्यास व कहानी संग्रह भी उर्दू में ही छपे। सन 1916 में प्रकाशित पंच परमेश्वर से प्रेमचंद हिंदी कहानी के क्षेत्र में आए। अपनी मृत्यु के समय तक प्रेमचंद कहानी लिखते रहे। कफ़न उनकी अंतिम कहानी है।

1916 से लेकर 1936 तक प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियां लिखीं। इन कहानियों में से अधिकांश कहानियों के केंद्र में ग्रामीण जीवन, किसान समस्या, महाजनी सभ्यता , राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की भागीदारी आदि विषय रहे हैं। प्रेमचंद की कहानियों का स्वर आदर्श से युक्त रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की आवाज, उसके संघर्ष को आशावादी दृष्टि से ही उठाया जा सकता है। यही एक सच्चे साहित्यकार का लक्षण हो सकता था। प्रेमचंद यदि काम कर रहे थे। वे अपने समय में जनता की आकांक्षा को चित्रित करने वाले साहित्यकार थे।

कफ़न कहानी का प्रकाशन 1936ई में हुआ। कालक्रम की दृष्टि से इसे प्रेमचंद की अंतिम कहानी कहा गया है। किंतु अपने कथ्य व ट्रीटमेंट में भी यह प्रेमचंद की दूसरी कहानियों से भिन्न है। यही कारण है कि कफन को प्रेमचंद की पहली आधुनिक कहानी कहा गया है। जब हम किसी कहानी को आधुनिक कहानी कहते हैं तो उसका तात्पर्य यह होता है कि उस कहानी में आधुनिक जीवन की समस्याएं चित्रित हुई हैं। आधुनिक जीवन तमाम प्रकार के अंतर्विरोधों, विरोधाभासों व विडंबनाओं से ग्रस्त रहा है। एक ओर आधुनिकता के तर्क, बुद्धि हमें आगे ले जाते हैं तो दूसरी ओर हमें बद्ध करने

लगते हैं। तब मनुष्य का जीवन अनेक प्रकार की जटिलताओं से घिर उठता है। जब कोई साहित्यकार जीवन की इन्हीं पेंचीदगियों को अपनी रचना का विषय बनाता है तब हम उसको आधुनिक कहते हैं। इस ढंग से ही कफ़न को आधुनिक कहानी कहा गया है।

प्रेमचंद की दूसरी कहानियों में भी यथार्थ का सूक्ष्म अंकन हुआ है। किंतु वे कहानियां अपने निष्कर्ष व ट्रीटमेंट में भावुकता को न छोड़ सकी हैं। इस दृष्टि से कफन दूसरी कहानियों से भिन्न कहानी है।

प्रस्तुत इकाई में हम कफ़न कहानी के मूल पाठ का अध्ययन करेंगे व कहानी के मुख्य बिंदुओं से परिचित होंगे।

अभ्यास प्रश्न) 1

सही/ गलत का चुनाव कीजिए।

1. सोजेवतन कहानी संग्रह उर्दू भाषा में छपा था।
2. पंच परमेश्वर कहानी प्रेमचंद की अंतिम कहानी है।
3. कफ़न प्रेमचंद की अंतिम कहानी है।
4. कफ़न कहानी का प्रकाशन 1936 ई में हुआ है।
5. कफ़न कहानी को प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानी कहा गया है।

6. 4 कफन: मूल पाठ

झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-वेदना में पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी, कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा-मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।

माधव चिढक़र बोला-मरना ही तो है जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?

‘तू बड़ा बेदर्द है बे! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!’

‘तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।’

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढक़र लकडिय़ाँ तोड़ लाता और माधव बाज़ार से बेच लाता और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनो साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर्ज़ से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज़ दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आयी थी, उसने इस ख़ानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आयी, यह दोनों और भी आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकडऩे भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्ब्याज भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और यह दोनों इसी इन्तजार में थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा-जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है!

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ़ कर देगा। बोला-मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

'डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं; और फिर मुझसे लजाएगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ! उसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी!'

'मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में!'

'सब कुछ आ जाएगा। भगवान् दें तो! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था; मगर भगवान् ने किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।'

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज़्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज़्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी, कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते! दोनों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठण्डा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गयीं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज़्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफ़ी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बरात याद आयी, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक़ बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी, बोला-वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लडक़ी वालों ने सबको भर पेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको! छोटे-बड़े सबने पूड़ियाँ खायीं और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज़ चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म, गोल-गोल सुवासित कचौडियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर!

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मजा लेते हुए कहा-अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

'अब कोई क्या खिलाएगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। सादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है!'

'तुमने एक बीस पूरियाँ खायी होंगी?'

'बीस से ज़्यादा खायी थीं!'

'मैं पचास खा जाता!'

'पचास से कम मैंने न खायी होंगी। अच्छा पढ़ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

2

सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गयी थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज़्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस?

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गये। वह इन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा-क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखलाई भी नहीं देता! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने ज़मीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा-सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गयी। रात-भर तड़पती रही सरकार! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गयी। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक! तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका ग़ुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ।

जमींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दण्ड देने का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकालकर फेंक दिए। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब जमींदार साहब ने दो रुपये दिये, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता? घीसू जमींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चारे आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गयी। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्मदिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

3

बाज़ार में पहुँचकर घीसू बोला-लकड़ी तो उसे जलाने-भर को मिल गयी है, क्यों माधव!

माधव बोला-हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।

'तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।'

'हाँ, और क्या! लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता है?'

'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'

'कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।'

'और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।'

दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाज़ार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस अनाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर! तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा-साहूजी, एक बोतल हमें भी देना।

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आयी और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला-कफ़न लगाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो-दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं!

'बड़े आदमियों के पास धन है, फ़ूँके। हमारे पास फूँकने को क्या है?'

'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है?'

घीसू हँसा-अबे, कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आएगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

माधव भी हँसा-इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला-बड़ी अच्छी थी बेचारी! मरी तो खूब खिला-पिलाकर!

आधी बोतल से ज़्यादा उड़ गयी। घीसू ने दो सेर पूडिय़ाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दूकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त इस शान में बैठे पूडिय़ाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला-हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा?

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की-जरूर-से-जरूर होगा। भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र-भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला-क्यों दादा, हम लोग भी एक-न-एक दिन वहाँ जाएँगे ही?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर!'

'पूछेगी

तो जरूर!'

तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ? उसको कफ़न मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा!'

माधव को विश्वास न आया। बोला-कौन देगा? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में तो सेंदुर मैंने डाला था।

'कौन देगा, बताते क्यों नहीं?'

'वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आएँगे।'

'ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज़्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मजे ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं! पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूडिय़ों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा-ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गयी। मगर तेरा आशीर्वाद उसे ज़रूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं!

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा-वह बैकुण्ठ में जाएगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला-हाँ, बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की ख़ासियत है। दु:ख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला-मगर दादा, बेचारी ने ज़िन्दगी में बड़ा दु:ख भोगा। कितना दु:ख झेलकर मरी!

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा। चीखें मार-मारकर।

घीसू ने समझाया-क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गयी, जंजाल से छूट गयी। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे- 'ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी।

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

अभ्यास प्रश्न)2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

6. माधव की पत्नी .... थी।
7. कफन के लिए ……..रुपए जुटे थे।
8. कफन हिंदी की पहली …...... कहानी है।
9. प्रेमचंद ने लगभग …........... कहानियां लिखी हैं।
10. प्रेमचंद के साहित्य को .... कहा गया है।

6.5- कफ़न: विवेचन

प्रिय छात्रों ! आपने प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी कफ़न का पाठ कर लिया होगा। आशा है आपको कहानी पसंद आई होगी। कहानी पढ़ने के उपरांत आपके मन में कुछ प्रश्न भी उठे होंगे। इकाई की प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि यह प्रेमचंद की भिन्न कहानी है। इसलिए कहानी की समझ की सुविधा की दृष्टि से अब हम कुछ बिंदुओं पर चर्चा करेंगे।

प्रश्न 1 = क्या कफन कहानी में घीसू माधव का हुक्का पानी बन्द था या वह बिरादरी बाहर था कि बुधिया के मरने पर उसको कफन देने वाले और लाश उठाने वाले नहीं मिले ?

प्रश्न 2= क्या बुधिया लावारिस थी या उसके मायके वाले भी नहीं थे? उन महिलाओं के पति कहाँ गए जो बुढ़िया के मरने से पहले उसकी प्रसव-पीड़ा के समय सहयोग कर रही थीं?

प्रश्न 3 - जब बुढ़िया का सामजिक सम्बन्ध इतना संकीर्ण नहीं था तो उसकी मृत्यु के बाद घीसू और माधव की वैसी असहायता कैसे सम्भव है? यदि ऐसा था भी तो प्रेमचंद जी को इसकी सूचना अपने पाठकों को देनी चाहिए थी या नहीं?

प्रश्न 4- बुधिया के मरने पर उसको कफ़न देने वाले और लाश उठाने वाले नहीं मिले?

प्रश्न 5- क्या कफ़न अतिरंजित कहानी है?क्या कहानी में चित्रित दृश्य वास्तविक जीवन में भी संभव हैं?

इसी प्रकार के कुछ और भी प्रश्न आपके मन में उठ सकते हैं। अब हम कहानी की समझ की दृष्टि से कुछ बिंदुओं पर बात करेंगे।

कहानी बताती है कि बुधिया के कफ़न के लिए 5 रुपये जमा हुए थे। कफ़न लेने घीसू-माधव जाते हैं, उस वक्त बांस काटने और अन्य काम गांव वाले कर रहे होते हैं। एक असंगति यह भी है कि प्रथम दृष्टि में पाठक को लगता है कि बुधिया के प्रसव वेदना के समय जो स्त्रियां सहयोग कर रही थीं, वे कहां गयीं? कहानी में वर्णन है कि झोपड़े के भीतर बुधिया अकेली प्रसव वेदना से तड़प रही थी और झोपड़े के बाहर घीसू- माधव भूने आलू खा रहे थे।

फिर प्रश्न यह कि बुधिया, घीसू- माधव के प्रति असहायता का कारण प्रेमचंद ने पाठकों को नहीं बताया।
कहानी की यदि कोई कमजोरी है तो यह कि बुधिया के पछाड़ और प्रसव वेदना के स्वर गांव वालों को किस प्रकार सुनाई न पड़े?
इसका उत्तर यह हो सकता है कि गांव की बस्तियां सघन नहीं होतीं। घर बहुत दूर-दूर भी होते हैं, सम्भवतः इस कारण ऐसा हुआ हो। किन्तु बुधिया की मृत्यु सूचना पर प्रेमचंद टिप्पणी करते हैं-" पड़ोस वालों ने जब रोना-धोना शुरू किया तो दौड़े हुए आए और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन दोनों को समझाने लगे।.....गांव की नर्मदिल स्त्रियां आ-आकर लाश देखतीं थीं और उसकी बेबसी पर दो बूंद आंसू बहाकर चली जाती थीं।" (कफ़न)
दरअसल कफ़न कहानी का व्यंग्य घीसू- माधव या बुधिया की कहानी में नहीं है। कफ़न को समझने के लिए मार्क्स के 1844 के लेख को पढ़ा जाना चाहिए जो श्रम और अलगाव की समस्या को हमारे सामने रखता है। इस संदर्भ में मार्क्स की पूंजी को भी पढ़े जाने की जरूरत है। खुद प्रेमचंद ने संक्षेप में घीसू- माधव के श्रम से अलगाव के कारणों की खोज करते हुए टिप्पणी की है कि " जहां श्रम का उचित मूल्य न मिले, वहां श्रम न करना ही बेहतर है"। प्रेमचंद की यह टिप्पणी मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत की याद दिलाती है। कफ़न में प्रेमचंद लिखते हैं- "...फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो उसे कम-से-कम किसानों की सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते"। (कफ़न) । कुछ लोगों को घीसू- माधव मूर्ख लगते हैं। इसलिए उनकी बौद्धिक बातों को वे प्रेमचंद की कहानी कला की कमजोरी समझते हैं। किंतु इस भ्रम को तोड़ने की जरूरत है।

एक अन्य आक्षेप यह भी लगता रहा है कि क्या भूख इतना अमानवीय बना देती है कि कोई कफ़न के पैसे के शराब पी जाएं? दरअसल भूख व्यक्ति को अमानवीय बना देती है। अमानवीय व्यक्ति के लिए फिर सही -गलत का प्रश्न बेमानी हो जाता है।

वस्तुत: कफन के माध्यम से प्रेमचंद यह संदेश देना चाह रहे हैं कि समाज में श्रम व पूंजी का उचित वितरण आवश्यक है। अन्यथा व्यक्ति अमानवीय बन जाता है।

6.6- सारांश

कफन प्रेमचंद की अंतिम कहानी है। यह कहानी प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण की कहानी है। कफन से पूर्व की प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों का स्वर आदर्शात्मक है। यही कारण है कि प्रेमचंद के शिल्प को आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहा गया है। कफन में यथार्थ अपने प्रखर रूप में है। आदर्श अब पीछे हो चला है। यही कारण है कि इस कहानी को अतिरंजित कहानी भी कहा गया। अमानवीय चरित्रों यानी घीसू - माधव का चरित्रांकन इतना तीखा है कि बहुत से आलोचकों ने इसे अवास्तविक कहानी तक कह दिया है। सच यह है कि व्यवस्था और परिस्थिति ही व्यक्तित्व का निर्माण किया करती हैं। घीसू - माधव का अमानवीय चेहरा दरअसल समाज का अमानवीय चेहरा है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यही दिखलाना चाहते थे। जो समाज अपने नागरिकों को भरपेट भोजन नहीं दे सकता, वह अमानवीय चरित्र ही पैदा करेगा। इस ढंग से कफन कहानी को पढ़ा जा सकता है।

6.7 शब्दावली

अलाव - लकड़ी से जलाई गई आग
कुनबा - टोला, मुहल्ला
आकाश-वृत्ति - भाग्य भरोसे जीवन निर्वाह करने की वृत्ति।
निर्बयाज भाव - बिना चिंता, लिहाज के
बैकुंठ - पौराणिक मान्यता की दृष्टि से मृत्यु उपरांत की जगह

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1
1. सही
2. गलत
3.गलत
4.सही
5.सही
अभ्यास प्रश्न - 2
6. बुधिया

7. पांच रुपए
8. आधुनिक
9. 300
10. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मानसरोवर, प्रेमचंद
2. कफन कहानी

6.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. प्रेमचंद और उनका युग, शर्मा, रामविलास

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कफन कहानी के माध्यम से ग्रामीण जीवन के यथार्थ को वर्णित कीजिए।
2. कफन के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालिए।

इकाई –7 कफन: पाठ एवं मूल्यांकन

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 कफन:मूल पाठ:विश्लेषण
7.4 कफन: कुछ अन्य प्रश्न
7.4.1 कहानी का दलितवादी पाठ
7.4.2 कहानी का स्त्रीवादी पाठ
7.5 कफन: आधुनिक पाठ
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 सहायक पाठ्य सामग्री
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! पिछली इकाई में आपने कफ़न कहानी का पाठ किया। आपने जाना कि कफ़न प्रेमचंद की अंतिम कहानी है। आपने यह भी पढ़ा कि कफ़न प्रेमचंद की दूसरी कहानियों से भिन्न कहानी है। इस इकाई में आप कफ़न कहानी के मूल्यांकन के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं से परिचित होंगे।

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के प्रस्थान बिंदु हैं। कई बार कथा साहित्य की उपलब्धि के तहत तो कई बार आक्षेप के लिए, प्रेमचंद साहित्य के मानचित्र पर आते ही रहते हैं। यह प्रेमचंद की सफलता है और हिंदी कथा साहित्य की असफलता, कि प्रेमचंद अब भी मजबूरी बन हुए हैं। बहरहाल प्रेमचंद के कफ़न और उस पर उठे विवाद के बीच कुछ साहित्यिक विचार आवश्यक हो उठते हैं।

कफ़न हिंदी कहानी में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रही है। इस कहानी का मिज़ाज प्रेमचंद की ही कई कहानियों से भिन्न है। यह मिज़ाज यथार्थ का नहीं है। इस धरातल का कारण आधुनिकता से जुड़ा हुआ है। कफ़न प्रेमचंद की पहली और आख़िरी आधुनिक कहानी है। इतिहास यदि अवसर देता तो प्रेमचंद कुछ और आधुनिक कहानी लिखते, किन्तु आकस्मिक मृत्यु ने उन्हें यह अवसर न दिया। इतिहास में कल्पनामूलक संयोग नहीं होते। बस संयोग होते हैं। कफ़न कहानी को समझने की दृष्टि से आधुनिक मानस की समझ आवश्यक है। सामंती मानस रखकर कफ़न कहानी को नहीं समझा जा सकता।

7.2 उद्देश्य

बीएचएल द्वितीय सेमेस्टर की यह सातवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

* कफ़न कहानी के पाठ को समझने के सूत्र प्राप्त कर सकेंगे।
* कफ़न कहानी के आधुनिक कहानी के मूल बिंदुओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
* प्रेमचंद की कहानी कला से परिचित हो सकेंगे।
* ग्रामीण जीवन के परिवेश से परिचित हो सकेंगे।
* किसान व मजदूर वर्ग की समस्याओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 कफ़न: मूल पाठ : विश्लेषण

कफ़न प्रेमचंद की आधुनिक कहानी है। आधुनिक है, इसलिए अतिरंजित भी। हर आधुनिक कहानी अतिरंजित भी हो, यह आवश्यक नहीं। बावजूद यथार्थ जब अतिरंजित होता है, तब अतियथार्थवादी हो उठता है। भाव जब अतिशयोक्ति में ढलता है तब गल्प में ढल जाता है। चूँकि यथार्थ जब अतिरंजित हो जाता है तब अतियथार्थ में ढल जाता है। इसलिए कफ़न को समझने के लिए पहली शर्त अतियथार्थवाद की समझ है।

कफ़न की अतिरंजना कथ्य व चरित्र चित्रण दोनों धरातल पर चित्रित है। घीसू-माधव अमानवीय पात्र हैं। अमानवीय पात्रों का चरित्र चित्रण यदि पूंजीवादी व्यवस्था में होता है, तब उसके मायने भिन्न होते हैं। डी-ह्यूमनाइजेशन का संबंध अलगावपन और अकेलेपन से है। सामंती जीवन पद्धति में अमानवीयता क्रूरता के तहत आती है, जबकि पूंजीवादी व्यवस्था में यह अलगावपन से आती है। घीसू-माधव के अमानवीयता को तार्किक रूप देने के लिए प्रेमचंद उसके कारणों की पड़ताल करना नहीं भूलते। कहानी के निम्न अंश को देखें- " ... जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।*** उसे यह तसकीन तो थी कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते"। यहँ प्रेमचंद घीसू-माधव के अमानवीयता को विसंगतिपूर्ण समाज के असंगतिपूर्ण श्रम और पूंजी के बंटवारे से उत्पन्न हुआ बताते हैं। घीसू-माधव अतिरंजित पात्र लगते हैं। वस्तुतः वे मिसफिट पात्र हैं। मिसफिट पात्र अतिरंजना का शिकार होता ही है। प्रेमचंद जिस श्रम और मुनाफ़े के अंतर्विरोध को दिखाना चाहते हैं, वह कहानी का केंद्रीय तत्व है। कहानी की कथावस्तु यदि गांव की बजाय शहर में घटती तो भी कहानी के व्यंग्य पर कोई फ़र्क न पड़ता।

दलित चिंतकों ने कफ़न को दलित विरोधी कहानी माना है। संभवतः घीसू-माधव के दलित होने (चमारों का कुनबा था) के कारण उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला हो। ऐसे लोगों को कहानी की इन पंक्तियों को फ़िर से पढ़ना चाहिए-" ये ही लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं। *** वह न बैकुंठ जाएगी तो क्या वे मोटे-मोटे लोग जाएंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं। "। इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद तो कफ़न ब्राह्मणवाद के विरोध की कहानी ठहरती है, न कि दलित विरोधी कहानी। कल्पना करें कि कुनबा किसी और जाति का होता तो? तब भी क्या इसी निष्कर्ष की ओर जाते? वैसे तो यह प्रश्न निरर्थक है। कारण यह कि 'पाठ' ही सबसे प्रामाणिक है। पाठ के बाहर जाने पर डॉ धर्मवीर की तरह अराजकतावादी पाठ की ओर जाने का ख़तरा बढ़ जाता है। यहाँ लेखक और उसके पात्रों के अंतरसंबंध पर कुछ बातें जरूरी हो जाती हैं।

लेखक के पात्र उसकी रचना होकर भी उसकी इच्छा मात्र या छाया मात्र नहीं होते। किसी रचना के पात्र लेखक द्वारा रचित होकर भी रचना के कथ्य से अनुशासित व अनुप्रेरित होते हैं। कथ्य व चरित्र का अंतरसंबंध जब प्रगाढ़ हो उठता है, तब चरित्र लेखक की इच्छा छाया से मुक्त होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व धारण कर लेते हैं। कफ़न में घीसू-माधव जैसे चरित्र

तब प्रेमचंद के हाथ से छूट कर कथ्य का अनुसरण करने लगते हैं। इस क्रम में चरित्र अराजकतावादी होकर अतिरंजित हो उठते हैं। घीसू-माधव का चरित्रांकन करना या उन्हें अस्तित्ववादी ढंग से चित्रित करना प्रेमचंद का उद्देश्य नहीं रहा है। प्रेमचंद का कथ्यगत उद्देश्य "श्रम से अलगाव" व "स्वच्छंद पूँजी के खेल" के बीच निर्मित हुआ है। तब कफ़न की खरीद या घीसू-माधव का कफ़न के पैसे से शराब पी लेना, मात्र कथ्यगत बहाना है।

घीसू-माधव के चित्रण की अस्वाभाविकता आलोचकों के केंद्र में रही है। घीसू-माधव का बुधिया को न बचाना, एक महत्वपूर्ण आक्षेप है। आये दिन बेटे द्वारा पिता की हत्या, बाप द्वारा पुत्री से बलात्कार, बेटे द्वारा माता-पिता को घर से निकाल देना, माँ द्वारा अपनी ग़रीबी से तंग आकर अपने बच्चों को ज़हर देना, जैसी ढेर सारी घटनाएं आये-दिन समाचार पत्रों, मीडिया में हम देखते रहते हैं। ये घटनाएं किसी को अस्वाभाविक नहीं लगतीं। मनुष्य के अच्छे होने, उठने व गिरने के नियम स्थिर नहीं हैं। इसलिए मनुष्य का अमानवीय चित्रण अस्वाभाविक होकर भी कृत्रिम नहीं हैं।

कफ़न कहानी में प्रेमचंद ग्रामीण परिस्थितियों को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत करते हैं? बुधिया की चीख़-पुकार से आस-पास के लोगों का न आना, घीसू-माधव का अस्वाभाविक वर्णन, जमींदार या ठाकुर की बारात का अप्रामाणिक वर्णन, घीसू-माधव का साथ ही कफ़न लाने जाना आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं, जो बार-बार प्रश्नांकित किये जाते रहे हैं। प्रश्न उचित भी है। कई बार बड़ा लेखक भी विवरण (डिटेलिंग) की उपेक्षा कर जाता है। मसलन, बुधिया को बचाने गांव की औरतें क्यों नहीं आईं? क्या घीसू-माधव का घर गांव के दूसरे घरों से बहुत दूर था? गांव में सघन बस्ती भी होती है और विरल भी। हालांकि हरिजन बस्ती या जातिगत ढंग से टोले या बस्ती की पद्धति गांवों में आम रही है। इसलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यहां प्रेमचंद विवरण नहीं देते। यहां उनका ध्येय घीसू-माधव को अमानवीय सिद्ध करना था। लेकिन प्रेमचंद यहां जातिगत टिप्पणी नहीं करते। चमारों का कुनबा कहने के अतिरिक्त वे कोई टिप्पणी नहीं करते। अतः जाति बदल देने से भी कहानी का व्यंग्य खंडित नहीं होता। बावजूद विवरण के इस रूप की उपेक्षा अनायास ही प्रेमचंद कर बैठते हैं। लेकिन यहां एक बात स्पष्ट रूप से समझने की है कि कफ़न दलित विमर्श की कहानी नहीं है। 'ठाकुर का कुआं', 'सद्गति' जैसी कहानियां दलित विमर्श की कहानियां हैं। कफ़न अलगावपन की कहानी है। इस अलगाव को पकड़ने के लिए प्रेमचंद श्रमिक वर्ग को केंद्र में लाते हैं। अतः जाति केंद्र में नहीं है। इसी प्रकार ठाकुर के बारात के वर्णन का दृश्य भी है। घीसू ठाकुर के बारात की बात (स्मरण) करता है। ठाकुर या उच्च जातियों की बारात में काम करने के लिए श्रमिक वर्ग को ले जाने का चलन गांवों में आम रहा है। प्रेमचंद उस ओर नहीं जाते। वे सिर्फ़ भोज की बात करते हैं। भोज कहानी के व्यंग्य से जुड़ा हुआ है। हालांकि इस दृश्य में अतिरंजना है। अतृप्ति के बीच अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन। इस बहाने प्रेमचंद इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में केवल एक बार भरपेट भोजन किया हो तथा श्रम से कटा हो, वह अमानवीय हो ही जायेगा। लेकिन घीसू-माधव संवेदनहीन नहीं हैं। बुधिया के लिए निष्क्रिय संवेदना वे बार-बार व्यक्त करते हैं। दरअसल वे मिसफिट चरित्र हैं, जो विसंगति, अंतर्विरोध और संत्रास से ग्रस्त हैं।

कफ़न प्रेमचंद की पहली आधुनिक संवेदना (बोध) की कहानी है। इसके पूर्व की उनकी कहानियां आधुनिकता के प्रभाव की कहानियां हैं। आधुनिकता ने नवजागरण को उत्पन्न किया और नवजागरण अपनी भूमिका के बाद आधुनिकताबोध में रूपांतरित हो गया। कफ़न की समीक्षा में इस तथ्य को शामिल किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1)

सत्य/असत्य का निर्धारण कीजिए।

1- कफन आधुनिक कहानी है।
2. कफन का परिवेश ग्रामीण है।
3. घीसू -माधव को मानवीय पात्र कहा गया है।
4. कफन में विवरण की अधिकता मिलती है।
5.कफन लंबी कहानी है।

7.4 कफन: कुछ अन्य प्रश्न

"जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज़्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज़्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था"। यह प्रेमचंद की टिप्पणी है। अपने पात्रों के साथ लेखक खड़ा रहे या न रहे। मतलब तटस्थ रहे। किंतु अपने पात्रों के प्रति सहानुभूति तो हर बड़े लेखक का लक्षण है।

कफन कहानी में कोई नायक नहीं है। कफन में केवल चरित्र हैं। प्रेमचंद जब कहानी लिख रहे थे, तब कहानी का कोई नायक या नायिका आवश्यक रूप में चित्रित होते थे। यह पैटर्न प्रेमचंद कफन में तोड़ते हैं। कफन आधुनिक समस्याओं की दृष्टि से लिखी गई कहानी है। यहां आवश्यक है कि हम फिर से इसके प्रमुख बिंदुओं की शिनाख्त करें।

7.4.1 कहानी का दलितवादी पाठ

प्रिय छात्रों, आपने कफ़न कहानी के मूल पाठ का अध्ययन कर लिया। अब हम उसके कुछ अन्य पाठ का विखंडन करेंगे।

क्या कफन दलित विमर्श की कहानी है? प्रेम ने दलित संवेदना को लेकर गिल्ली डंडा, ठाकुर का कुआं, सद्गति जैसी यादगार कहानियां लिखी हैं। इस दृष्टि से घीसू -माधव के दलित होने के कारण यह समझना आसान हो जाता है कि कफन दलित विमर्श की कहानी है। किंतु इस पाठ को सावधानीपूर्वक समझे जाने की आवश्यकता है। चमारों का कुनबा था और सारे गांव में बदनाम। यह वाक्य प्रेमचंद रखते हैं। इस वाक्य में असंगति है। वाक्य को इस प्रकार होना चाहिए था - चमारों का कुनबा था। उस कुनबे में (या बस्ती में) में घीसू -माधव रहते थे। वे पूरे गांव में बदनाम थे। प्रेमचंद पूरी कहानी में जाति सूचक कोई भी टिप्पणी नहीं करते। वे पूरे कुनबे को बदनाम कह भी नहीं रहे। वे सिर्फ घीसू -माधव को बदनाम

कह रहे हैं। लेकिन प्रेमचंद के इस पाठ में कई जगह विवरण गायब हैं। कुछ शब्द छूट गए हैं। एक शब्द से कफन न तो दलित विमर्श की कहानी होती है और न दलित विरोधी कहानी। घीसू- माधव दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र नहीं हैं। ये टिपिकल पात्र हैं। ये पात्र किसी भी जाति या वर्ग में हो सकते हैं। कुनबा किसी भी जाति का हो सकता था। कहानी में किसी खास जाति का होने के कारण घीसू और माधव इस तरह की प्रवृत्ति धारण नहीं करते। वे श्रमिक वर्ग का होने के कारण इस तरह की प्रवृत्ति के शिकार हैं। जिस समाज में श्रमिक को उसके कार्य का उचित मूल्य न मिले, वहां कार्य के प्रति उदासीनता आ जाए, तो कोई आश्चर्य नहीं। चूंकि सामंती अधिरचना में ज्यादातर दलित वर्ग ही जुड़े हुए थे, इसलिए पाठ की प्रामाणिकता की दृष्टि दलित वर्ग का चुनाव किया गया है। कह सकते हैं कि कफन दलित विमर्श और दलितवाद की कहानी नहीं है।

7.4.2 कहानी का स्त्रीवादी पाठ

कफन के अलग--अलग पाठ प्रचलित हुए हैं। आधुनिकता से निसृत कफन कहानी का परिवेश सामंती है। किंतु उत्तर आधुनिकता में पाठ के अंतरपाठ पर बहुत बल रहता है। यही कारण है कि पाठ के सत्य तक पहुंचने से पहले उसे अलग-अलग अंतरपाठ की प्रक्रिया से गुजारना पड़ता है। प्रश्न है कि कफन का स्त्रीवादी पाठ क्या हो सकता है? कफन कहानी में स्त्रीवादी पाठ के लिए कुछ संकेत हैं। कहानी की एक ही मुख्य पात्र बुधिया है। बुधिया कहानी में प्रत्यक्ष रूप में कहीं उपस्थित नहीं होती, किंतु पूरी कहानी उसी के निमित्त रची गई है। बुधिया की प्रसव वेदना और घीसू-माधव का आलू छीलकर खाना एक विरोधी पद युग्म है। बुधिया की मृत्यु मनुष्यता के मरने का संकेत है। बुधिया की मृत्यु उपरांत उसके दाह संस्कार के निमित्त कफन का इंतज़ाम करना और कफन के पैसे का शराब पी जाना यही कहानी का कथ्य है। बुधिया के लिए कफन , बुधिया के कफन की शराब, जैसे पदयुग्मों की समीक्षा करें तो हम देखते हैं कि बुधिया कहानी की मुख्य पात्र है। कहानी में दूसरी किसी स्त्री पात्र का उल्लेख नहीं है। बुधिया की मृत्यु के पश्चात कुछ नरम दिल स्त्रियों का जिक्र प्रेमचंद अवश्य करते हैं किंतु वे उसका विस्तार नहीं करते। दरअसल प्रेमचंद इस कहानी में विवरण की ओर नहीं जाते। अपने मुख्य पात्रों पर उनकी दृष्टि इतनी ज्यादा केंद्रित हो गई है कि अन्य पात्र उपेक्षित हो चले हैं। कफन कहानी का स्त्रीवादी पाठ यही हो सकता है कि कहानी का व्यंग्य पुरुष पात्रों तक सीमित रहा है।

7.5 कफन: आधुनिक पाठ

डॉ इंद्रदान मदान ने कफन कहानी को हिंदी की पहली आधुनिक कहानी कहा है। प्रश्न है कि हम किसे आधुनिक कहानी कहें? आधुनिक कहानी से पूर्व हमें आधुनिकता की समझ भी होनी चाहिए। आधुनिक काल या आधुनिकता एक आधारगत परिवर्तन है। समाज के केंद्र में जब मशीन, फैक्ट्री, उत्पादन, श्रम आते हैं तो वैचारिक रूप में बहुत से परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। तर्क, बुद्धि, कार्य-कारण संबंध, वर्तमान बोध आदि तत्वों ने देखने की एक नई दृष्टि विकसित की। साहित्य के केंद्र भी बदल गए। साहित्य के केंद्र में सामान्य मनुष्य आ गया। प्रेमचंद ने दलित, किसान, स्त्री आदि को अपनी रचना का हीरो बनाया।

आधुनिक और आधुनिकता के दो चरण हैं। आधुनिक युग अपने साथ तर्क-वितर्क लेकर आया। लेकिन आधुनिक जीवन की समस्या भी यहीं से शुरू हुई। आधुनिक जीवन ने मनुष्य को लाचार भी बनाया। विज्ञान की खोजों ने मनुष्य को बौना

भी बनाया। मनुष्य का भौतिक विकास उसके आत्म पर हावी होने लगा था। आधुनिक जीवन की समस्या ने व्यक्ति के सामने नए तरह ही समस्या उत्पन्न की। व्यक्ति अपने परिवेश से कटकर अपरिचय व अलगावपन का शिकार हो गया। संत्रास, विडंबना, त्रासदी, अंतर्विरोध, तनाव जैसी मनोवृत्तियों के बीच व्यक्ति अपने को असहाय महसूस करने लगा।

कफन कहानी में भी आधुनिक जीवन की समस्या चित्रित हुई है। घीसू - माधव परिवेश से कटे हुए पात्र हैं। वे अपने परिवेश (गांव , किसान) से कटे हुए चरित्र हैं। वे मिसफिट चरित्र हैं। वे अकेलेपन, अपरिचय से घिरे हुए हैं। ऐसे व्यक्ति अपने अंतर्विरोधों से बद्ध होकर असंगति, संत्रास का शिकार हो उठते हैं। घीसू और माधव ऐसे ही पात्र हैं। इस तरह के पात्र अजनबी, अलगावपन के शिकार होकर ट्रैजिक जीवन को जीते हैं। चूंकि वे अपना चुनाव खुद करते हैं। इसलिए वे प्रामाणिक जीवन जीते हैं।

7.6 सारांश

कफन कहानी हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक नए युग का प्रारंभ है। कफन ने हिंदी कहानी को प्रौढ़ बनाया। कफन कहानी को समझने के लिए आधुनिक दृष्टि की आवश्यकता है। सामंती चश्मे से कफन कहानी को नहीं समझा जा सकता। कफन कहानी यह प्रश्न भी उठाती है कि उचित श्रम के भुगतान के अभाव में किसान, मजदूर बन रहे हैं। कफन कहानी व्यवस्था व समाज से कटे हुए चरित्रों की कथा कहती है। यह कहानी यह प्रश्न भी उठाती है कि उचित सामाजिक व्यवस्था के अभाव में व्यक्ति अमानवीय बन जाता है। कफन अमानवीय चरित्रों के माध्यम से अमानवीय समाज और व्यवस्था की कहानी है।

7.7 शब्दावली

आधुनिकता - वर्तमान कार्य कारण व्यवस्था, जिसमें बुद्धि व तर्क से सभी प्रश्नों का उत्तर तलाशने का दावा किया गया।
अजनबीपन - अपने परिवेश से कटा हुआ व्यक्ति
विसंगति - सामाजिक व्यवस्था में असंगति होना
मिसफिट - समाज के ढांचे में फिट न होने वाला व्यक्तित्व

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2.सत्य
3.असत्य
4.असत्य
5.असत्य

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.कफन, प्रेमचंद
2. मानसरोवर

7.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. प्रेमचंद और उनका युग, शर्मा, रामविलास
2. प्रेमचंद, जनवादी समझ और साहित्य, शुक्ल, रामनारायण

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कफन कहानी की समीक्षा करें।
2. कफन के परिवेश पर विचार करें।

इकाई 8'अपना-अपना भाग्य'- जैनेन्द्र कुमार:पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल पाठ
8.4 मानवीय मूल्यों के पतन व संवेदनहीनता का चित्रण
8.5 'अपना-अपना भाग्य': विवेचन
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद की कहानियों से आप अवश्य परिचित होंगे, इनकी कहानियाँ आजादी के पहले के भारतीय समाज के यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। प्रेमचंद के समकालीन कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन्होंने प्रेमचंद के सम्पर्क में रहने के बावजूद अपने कथालेखन में एक अलग रास्ते की तलाश की। जैनेन्द्र का जन्म 2 जनवरी सन् 1905 में कौड़ियागंज, जिला अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इनके बचपन का नाम सकटुआ, आनन्दी लाल था। बचपन में ही पिता श्री प्यारेलाल की असमय मृत्यु के उपरांत ये अपनी माँ श्रीमती रामदेवी बाई के साथ अपने ननिहाल में मामा के यहाँ आ गये। इनका आरम्भिक पालन-पोषण मामा महात्मा भगवानदीन के सान्निध्य में हुआ। जहाँ सन् 1911 में 6 वर्ष का होने के उपरांत उन्होंने मामा द्वारा स्थापित 'हस्तिनापुर ब्रह्मचर्याश्रम' में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु प्रवेश लिया। यहीं पर इनका वर्तमान नामकरण भी हुआ, यानी अब ये जैनेन्द्र कुमार के नाम से पुकारे जाने लगे। आश्रम से अपनी आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत सन् 1919 में पंजाब से प्राइवेट मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की उच्च शिक्षा हेतु आपने वाराणसी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। परंतु स्वाधीनता संघर्ष के दरम्यान होने वाले असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के चलते पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी। सन् 1920 से 1923 तक स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी के उपरांत इन्होंने कुछ दिनों तक दिल्ली में रहकर जीवन-यापन हेतु व्यापार का कार्य भी किया। साथ ही इन्होंने कुछ क्रांतिकारी राजनीतिक पत्रों में संवाददाता की भूमिका भी निभाई। इस दरम्यान आपका लेखन जीवन की तमाम् कठिनाईयों के बावजूद बदस्तूर जारी रहा। राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी के चलते कई बार जेल भी जाना पड़ा।

जैनेन्द्र कुमार का रचनाकर्म विस्तृत फलक को अपने में समेटे हुए हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। इनका प्रथम कहानी संग्रह सन् 1925 में 'फाँसी' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसने साहित्य जगत में इन्हें चर्चा के केन्द्र में ला खड़ा किया। अपने पास-पड़ोस के जीवन यथार्थ को आधार बनाकर कहानियाँ लिखी हैं। इनकी लिखी कहानियाँ विचार प्रधान हैं। जिसमें विचारों की प्रधानता के साथ-साथ मानव मन को विश्लेषित करने का प्रयास भी हमें दिखाई पड़ता है। इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं- 'फाँसी', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'एक रात', दो चिड़ियाँ', 'लाल सरोवर', 'बाहुबली', 'एक कैदी', 'खेल', 'ध्रुवयात्रा', 'पाजेब' तथा जयसन्धि। इनकी सम्पूर्ण कहानियों का संग्रह 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित है। अनेक लोकप्रिय व बहुचर्चित उपन्यासों की रचना इनके द्वारा की गई। 'परख', 'तपोभूमि', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी',

'सुखदा', 'विर्वत', 'व्यतीत' और 'जयवर्द्धन' जैसे उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य को अलग धरातल प्रदान करते हैं। बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न रचनाकार जैनेन्द्र द्वारा अनुवाद, सम्पादन और निबन्ध लेखन का कार्य बखूबी किया गया।

जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ मानव मन के आन्तरिक भावों, विचारों का सूक्ष्म विश्लेषण करती हैं। दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इनकी कहानियों को प्रेमचंद से अलग करता है, जहाँ उनकी रुचि घटनाओं के यथार्थ चित्रण में न होकर उसकी तह तक जाने में हैं। घटनाओं की तुलना में मानव अनुभूतियों का चित्रण इनके यहाँ प्रमुख रूप से है, इसलिए कहानियों में घटना-विस्तार की अपेक्षा गहनता का भाव निहित है। साथ ही यह भी व्यक्ति की केन्द्रीयता के बावजूद समाज भी इनकी नजरों से ओझल नहीं हुआ है। इस प्रकार देखा जाय तो जैनेन्द्र कुमार का रचनाकर्म परिमाण में विपुल होने के साथ-साथ एक नवीन रचनात्मक व प्रयोगधर्मिता से परिपूर्ण है। जो उन्हें समकालीन कथाकारों से अलग करता है, यह अनायास नहीं कि वे अपने लेखन के आरंभ से ही आकर्षण और चर्चा के केन्द्र में रहे। प्रेमचंद के प्रिय कथाकार मित्रों में जैनेन्द्र का नाम प्रमुख है जिनकी किस्सागोई और कथा कहने का अंदाज और कथाकारों से उन्हें अलग करता है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

8.2 उद्देश्य

यह इकाई बहुचर्चित कथाकार जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' पर आधारित है। यहाँ पर आप 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के मूल पाठ का अध्ययन करेंगे, साथ ही इसके विवेचन में भी रूबरू होंगे। यह कहानी समाज में व्याप्त दिखावटी संवेदना, अवसरवादिता, झूठे अहंकार और बेबस की लाचारी को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के मूल पाठ का अध्ययन कर सकेंगे।
- मध्यवर्गीय अवसरवादिता, बाल मजदूर की विवशता व उसके कारणों पर विचार कर सकेंगे।
- व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते दिखावटी व्यवहार व झूठी सहानुभूति को समझ सकेंगे।
- 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का विवेचन कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के आधुनिक हिन्दी कहानी में स्थान व योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

8.3 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल पाठ

(1)

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये। नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अंगरेजों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वहीं सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर से उधर और उधर से इधर खेल रही थी। कहीं कुछ अंग्रेज,एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ मारते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगार मानो खतम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का खयाल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था, न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था, और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के, सब तरह के लोग उसमें थे। मानों मनुष्यता के नमूनों का बाजार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज उसमें थे और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे, वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली-पीली आँखे फाड़े, पिता की ऊँगली पकड़कर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्ग्गीं को अपने चारों तरफ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज-रमणियां थे, जो धीरे-धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में मौत आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ ही साथ, जरा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक, निरापद इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई सड़क पर चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल लक्ष्मी, सड़क के बिल्कुल किनारे दामन बचाती और सम्हालती हुई, साड़ी के कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवष्टनों में छिपाकर सहमी-सहमी धरती में आँखे गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थी।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजीदाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो बेटियों को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंगरेज को देखकर आँखे बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे-मानों भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

(2)

घण्टे-के-घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद होकर जम गये। मनुष्यों का वह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं के वहीं बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लाल बर्फ की चादर की तरह बिल्कुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था। सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका-सी जगमगा रहीं थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ, वह जल प्रतिबिम्बों को सौगुना, हजार गुना करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र कर पूंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ी के सिर पर की रोशनियां तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानो मर गयी। जगमगाहट लुप्त हो गयी। वह काले-काले भूत से पहाड़ भरी इस सफेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इस घनी गहरी सफेदी में दब गया। एक शुभ महासागर ने फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ, वह निर्भेद्य, सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिल्कुल निर्जन-चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोसलों में जो छिपा था, उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में कहीं से, ग्यारह बार टन-टन हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिये।

(3)

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील-मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़ गये। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहाँ तो ऊपर-नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिल्कुल किनारे एक बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था, पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, कब थमेगी-इसका पता न था। और वह कैसी क्या होगी-इसका भी कुछ अन्दाजा न था। उन्होंने कहा-आओ, जरा यहाँ बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे उस भीगी बर्फ-सी ठंडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

5-10-15 मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालुम हुआ। मैने खिसियाकर कहा -

''चलिए भी''

''अरे जरा बैठो भी''

हाथ पकड़कर जरा बैठने के लिए इस जोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा-लाचार बैठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था और यह जरा बैठना, जरा न था, बहुत था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले-

''देखो.... वह क्या है?''

मैने देखा- कुहरे की सफेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूरत हमारी तरफ बढ़ी आ रही थी। मैनं कहा- ''होगा कोई।''

तीन गज की दूरी से देख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज लटकाये हैं। पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे हैं, और वह न जाने कहाँ जा रहा है- कहाँ जाना चाहता है? उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है? न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुंगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा-कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है। आँखें अच्छी बड़ी, पर रूखी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनियाँ। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था-

मित्र ने आवाज दी- ''ए!''

उसने जैसे जाग कर देखा और पास आ गया।

''तू कहाँ जा रहा है रे?''

उसने अपनी सूनी आँखे फाड़ दी।

''दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?''

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

''कहाँ सोयेगा?''

''यहीं कहीं''

''कल कहाँ सोया था?''

''दुकान पर।''

''आज वहाँ क्यों नहीं?''

''नौकरी से हटा दिया।''

''क्या नौकरी थी?''

''''सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।''

''फिर नौकरी करेगा?''

''हाँ।''

''बाहर चलेगा?''

''हाँ।''

''आज क्या खाना खाया?''

''कुछ नहीं।''

''अब खाना मिलेगा?''

''नहीं मिलेगा।''

''यों ही सो जायेगा?''

''हाँ।''

''कहाँ?''

''यहीं, कहीं।''

''इन्हीं कपड़ों से?''

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं- ''यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न!''

''माँ-बाप हैं?''

''हैं।''

''कहाँ?''

''15 कोस दूर गाँव में।''

''तू भाग आया?''

''हाँ!''

''क्यों।''

''मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं-सो भाग आया, वहाँ काम नहीं रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था, और मारता था। माँ भूखी रहती थीं और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का। मुझसे बड़ा था। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।''

''कहाँ गया?''

''मर गया।''

''मर गया?''

''हाँ, साहब ने मारा, मर गया।'

''अच्छा, हमारे साथ चल।''

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे।

''वकील साहब!''

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। कश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में, हल्की-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

''आ-हा फिर आप!- कहिये।''

''आपको नौकर की जरूरत थी न ? -देखिए यह लड़का है।''

''कहाँ से ले आये?-इसे आप जानते हैं?''

''जानता हूँ-यह बेईमान नहीं हो सकता।''

''अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं- उठा लाये कहीं से- लो जी, यह नौकर लो।''

''मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।''

''आप भी..... जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाये।''

''आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ?

''माने क्या, खाक?-आप भी...! जी अच्छा मजाक करते हैं। अच्छा अब हम सोने जाते हैं।''

और वह चार रुपये रोज के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

(4)

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराशा भाव से हाथ बाहरकर मेरी ओर देखने लगे।

''क्या है?''

''इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था,'' अंग्रेजी में मित्र ने कहा- ''मगर, दस-दस के नोट हैं।''

''नोट ही शायद मेरे पास हैं, देखूँ?''

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। हम फिर अंग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा-''तब?''

मैने कहा-''दस का नोट ही दे दो।'' सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे- ''अरे यार! बजट बिगड़ जायेगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं हैं।''

''तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।''-मैने कहा।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले-''अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल डी पब' जानता है? वहीं कल 10 बजे मिलेगा?''

''हाँ..., कुछ काम देंगे हुजूर?''

''हाँ-हाँ, ढूँढ दूँगा।''

''तो जाऊँ?''

''हा,'' ठंडी साँस खींचकर मित्र ने कहा-''कहाँ सोयेगा?''

''यही कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे किसी दुकान की भट्टी में।''

बालक फिर उसी प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी- हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा, ''भयानक शीत है। उसके पास कम-बहुत कम कपड़े.....।''

''यह संसार है यार!''-मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनायी- ''चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।''

उदास होकर मित्र ने कहा- ''स्वार्थ!-जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, बेहयाई!''

X X X X

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलारे को वह बेटा-बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल डी पब' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल यात्रा खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़के के किनारे, पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया!

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़े कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतानेवालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठी और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गयी थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढँकने के लिए 'प्रकृति ने बालक के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।'

सब सुना और सोचा-अपना-अपना भाग्य!

8.4 मानवीय मूल्यों का पतन एवं संवेदनहीनता का चित्रण

आपने 'अपना-अपना भाग्य' कहानी पढ़ ली है। यह कहानी जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से है। जैसा कि आपने कहानी में पढ़ा व अपने आस-पड़ोस में देखा भी होगा कि अक्सर किसी के साथ कुछ भी अच्छा-बुरा होने पर उस घटना को व्यक्ति के भाग्य से जोड़ दिया जाता है। यह कहानी 'अपना-अपना भाग्य' की निरर्थकता को उजागर करती है। भाग्य की आड़ में किस तरह हम अपनी जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाते हैं। प्रस्तुत कहानी में इसका अंकन किया गया है। कहानी की शुरुआत नैनीताल के सामाजिक वातावरण के चित्रण से होती है। जिससे हम जान पाते हैं कि यह वातावरण आजादी से पूर्व का है। जब यहाँ अंग्रेजों का शासन था और उनके समक्ष भारतीय जनता की हैसियत शोषित जैसी थी। साथ ही मध्यवर्गीय पढ़े-लिखे भारतीयों की मानसिकता का भी अंकन हुआ है जो दिखने में तो भारतीय हैं, पर उनका काम अंग्रेजों की नकल करना और अपने देशवासियों का शोषण करने में उनका सहयोगी बनना है।

नैनीताल जैसा कि आप जानते हैं प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा-पूरा हैं जिसके चलते यहाँ पर लोग दूर-दूर से घूमने के लिए आते हैं। आज़ादी के पूर्व यहाँ अंग्रेजों की सुख-सुविधा हेतु तरह-तरह की व्यवस्था अंग्रेज सरकार द्वारा की गई थी। जिसमें घुड़दौड़, नौका विहार, क्लब, पोलो इत्यादि प्रमुख हैं जो कि अंग्रेजों की उच्च अभिरुचि का हमें पता देती

हैं। गर्व से तने हुए अंग्रेज, घोड़ी की बाग थामे स्थानीय गरीब निवासी, अंग्रेजों की नकल करने वाला पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग, स्त्रियों और बच्चों की हैसियत और स्थिति का चित्रण तत्कालीन समाज पर प्रकाश डालता है। जैसा कि आप जानते हैं कि जैनेन्द्र कुमार मानव के अंतर्तम में छुपे रहस्यों को उजागर करने वाले कथाकार है। उनकी यह प्रयोगधर्मिता बौद्धिकता व मनोविश्लेषण को आधार बनाती है। यानी उनके यहाँ किस परिस्थिति में मानव मन में क्या भाव-विचार उत्पन्न होते हैं, इसका विश्लेषण प्रमुख रूप से हुआ है। इसी के चलते उनके यहाँ घटनाओं का ज्यादा चित्रण न होकर चरित्र-चित्रण पर बल दिया गया है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में लेखक ने एक बालक को केंद्र में रखते हुए मध्यवर्ग के स्वार्थ व संवेदनहीनता को उजागर किया है। यह वर्ग समाज में व्याप्त हर विसंगति का हल भाग्य के हवाले कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाना चाहता है।

आपने 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में देखा कि किस प्रकार एक बालक आधी रात में दो प्रकृति प्रेमी मित्रों के आनंद में व्यवधान बनकर उपस्थित होता है। यह बालक नैनीताल में सर्द मौसम में रात के एक बजे नंगे पैर, भूखे पेट सड़कों पर किसी सुरक्षित जगह की तलाश में भटक रहा है, जहाँ वह किसी तरह रात गुजार सके। दोनों मित्र उसकी इस हालत के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करते हैं जो सारी स्थिति को बयां कर देते हैं-

''तू कहाँ जा रहा है रे?''

उसने अपनी सूनी आँखे फाड़ दीं।

दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

''कहाँ सोयेगा?''

''यहीं कहीं।''

''कल कहाँ सोया था?''

''दुकान पर!''

''आज वहाँ क्यों नहीं?''

''नौकरी से हटा दिया।''

''क्या नौकरी थी?''

''सब काम! एक रूपया और जूठा खाना।''

आपने देखा कि संवाद छोटे-छोटे होकर भी बालक की असहायता और मित्रों की संवेदनहीनता पर प्रकाश डालने में सक्षम है। इनके द्वारा प्रश्न पूछने पर वह बालक चुप हो जाता है और उसका बोलता चेहरा हमें सब बता देता है। आधी रात को अधनंगे भटकते एक बालक से मित्रों द्वारा प्रश्न पर प्रश्न पूछते जाना मध्यवर्गीय शंकालु प्रवृत्ति का भी

हमें पता देता है। हर प्रकार से संतुष्ट हो जाने के बाद बालक को वे कोई काम दिलाने के लिए अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ से उन्हें निराश होना पड़ता है। वह भी इस चलते कि इन वकील मित्रों को इस बालक पर भरोसा नहीं है। घोर व्यवहारिक मानसिकता का यहाँ हमें दर्शन होता है जो हर चीज को उपयोगिता के तराजू पर तौलती है। मानवीय संवेदना, दया जैसे तत्व मानो खो से गये हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ व अपनी सुख-सुविधा की चिन्ता इस वर्ग को इतनी ज्यादा है रात में एक निरीह बालक की समस्या इन्हें अपनी नींद में खलल सी जान पड़ती है। यहाँ से कहानी उस मोड़ पर आती है, जहाँ दोनों मित्र बालक को लेकर चिन्तित दिखाई पड़ते हैं, साथ ही यह भाव भी है कि किस प्रकार उस बालक से अपना पीछा छुड़ायें। वे इसके लिए बालक को कुछ पैसा देना चाहते हैं, पर उनके पास दस-दस के नोट हैं, खुले पैसे नहीं है। अपनी सारी सहानुभूति के बावजूद अपना बजट बिगड़ने के डर से कोई दस रुपये का नोट बालक को देने को तैयार नहीं होता। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ये दोनों मित्र होटल में ठहरे हुए हैं और बालक को आधी रात में ठंड से ठिठुरने के लिए अकेला छोड़ देते हैं। अंत में बालक ठंड में ठिठुरकर जान दे देता है। उसकी मौत की जानकारी होने के बाद ये लोग 'अपना-अपना भाग्य' कहकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पा लेते हैं।

आपने देखा कि इस कहानी का कथानक सीधा-सादा है, उलझाव नहीं है। पात्रों की संख्या भी बहुत कम है। पर यह कहानी हमारे समक्ष कुछ प्रश्न खड़े करती हैं, मसलन क्या एक दस वर्ष के बालक का नैनीताल की सर्द रात में ठिठुरकर दम तोड़ देना उसके भाग्य की देन है? जिसका जिक्र सैलानी मित्रों द्वारा किया जाता है। बाल मजदूरी अमानवीयता व उसके कारणों पर भी प्रस्तुत कहानी में प्रकाश डाला गया है। आपने यह महसूस किया होगा कि बालक घोर गरीबी के चलते अपना घर छोड़कर एक दुकान मालिक के यहाँ मजदूरी करने पर विवश हो जाता है। एक ऐसा मालिक जो क्रूर व निर्दयी है एवं जिसकी निर्दयता के चलते बालक का साथी दम तोड़ देता है। यह स्थिति उन आर्थिक विसंगतियों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करती है, जिसके चलते न जाने कितने बचपन तबाह हो रहे हैं। साथ ही समाज में व्याप्त उस मानसिकता से भी हमारा साक्षात्कार कराता है जहाँ स्वार्थ व संवेदनहीनता का भाव इतना प्रबल है कि ऐसा गरीब को वह मनुष्य का दर्जा देने को तैयार नहीं। यह मध्यवर्ग बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, पर किसी बेबस की सहायता के नाम पर तरह-तरह के बहाने बनाने लगता है। यह स्थिति मानवीय संवेदना में आ रही पतनशीलता को प्रदर्शित करती है। झूठी सहानुभूति, पाखण्ड, स्वार्थ, व्यक्तिगत हित इस वर्ग की खासियत बनती जा रही है। जैनेन्द्र कुमार इस कहानी के माध्यम से मानव की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं। संवेदना का क्षरण, मध्यवर्गीय अवसरवादिता, आडम्बरप्रियता का चित्रण पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में बौद्धिकता के प्रति आग्रह व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण प्रमुख रूप से दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में मानसिक द्वन्द्व व घात-प्रतिघात के चित्र बहुतायत हैं। प्रस्तुत कहानी में बच्चे की कुछ सहायता करने के दरम्यान दोनों मित्रों के बीच होने वाला संवाद मानसिक द्वन्द्व का परिचायक है, जिसमें करें या न करें का भाव तो निहित ही है, साथ ही मध्यवर्गीय संवदेनहीनता का प्रमाण भी है।

8.5 'अपना-अपना भाग्य'- विवेचन

अपने पिछले अनुक्रम के अन्तर्गत पढ़ा कि जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में व्यक्ति चित्रण पर ज्यादा जोर है। यानी मानव के अन्तर्तम में उठने वाले द्वन्द्व संवदेनाओं का यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में हमें प्राप्त होता है। उनकी

यह खासियत तत्कालीन लेखकों से अलग धरातल पर उन्हें प्रतिष्ठित करती हैं। 'अपना-अपना भाग्य' की कथावस्तु सरल होने के बावजूद पाठकों के मर्म को छूती है। कुछ पात्रों के चित्रण के आधार पर यह कानी उस सच से हमें रूबरू कराती है जो हमारे समाज में विसंगतियों के रूप में विद्यमान हैं। एक ऐसा समाज जो अपनी संवेदनहीनता व मानवीय मूल्यों के पतन के चलते टूट रहा है। मध्यवर्गीय चरित्र का खोखलापन यहाँ अपनी झूठी सहानुभूति व दिखावटी व्यवहार के बावजूद उजागर हो जाता है। यह मध्यवर्ग अपने व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि रखता है, जहाँ मानव मूल्यों की अहमियत न के बराबर है। इस कहानी के केन्द्र में एक बेसहारा दस वर्षीय बालक है, जो आधी रात में नैनीताल की सूनी सड़कों पर भूखे पेट किसी आश्रय की तलाश में भटक रहा है। उसे इस हालात में देखकर दोनों सैलानी मित्र उससे सहानुभूति तो प्रकट करते हैं, पर जब उसके लिए कुछ करने की बात आती है तो पीछे हट जाते हैं। बाद में इस बालक की मौत पर 'अपना-अपना भाग्य' कहकर संतोष की सांस लेते हैं। जैनेन्द्र कुमार की यह कहानी इस छोटे से प्रकरण को आधार बनाकर समाज में व्याप्त अमानवीयता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत कहानी में बाह्य परिवेश का चित्रण प्रमुख न होकर मन में उठने वाले भावों के चित्रण पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। यहाँ आप देखेंगे कि जैनेन्द्र कुमार किसी घटना का क्रमिक विवरण नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि जीवन में व्याप्त समस्याओं के जड़ की तलाश में गहरे उतरते हैं। जैनेन्द्र कथाकार होने के साथ-साथ चिन्तक की भूमिका में भी नजर आते हैं। इसी के चलते उनकी रचनाओं में बौद्धिकता का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी मानव मनोवृत्तियों का उद्घाटन करती है। जिसका आरंभ नैनीताल के स्वतंत्रता पूर्व वातावरण के चित्रण से होता है। जहाँ अंग्रेजों व भारतीयों के बीच की दूरी को लेखक ने बखूबी रेखांकित किया है। अंग्रेज सारी सुख-सुविधा का साधिकार उपभोग करते हुए नौका विहार का आनंद उठा रहे हैं- ''ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर खेल रही थीं। कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी मुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।'' वहीं पोलों लान में सारी चिन्ता से मुक्त खेलते हुए अंग्रेज बच्चे हैं। अंग्रेज जहाँ अधिकार भाव के गर्व से भरे हुए हैं, वहीं गरीब स्थानीय पहाड़ी लोग उनकी सेवा करने को मजबूर हैं। लेखक उपरोक्त उद्धरण के माध्यम से हमारे समक्ष गुलाम भारत की तस्वीर पेश करता है, जहाँ आम भारतीय की हैसियत अंग्रेजों के सामने तुच्छ है। साथ ही लेखक हमारे समक्ष अंग्रेज रमणियों एवं भारतीय महिलाओं के अन्तर को भी हमारे समक्ष अंग्रेज रमणियों एवं भारतीय महिलाओं के अन्तर को भी हमारे समक्ष उजागर करता है। जहाँ अंग्रेज महिलाएँ स्वच्छन्द भाव से अपने सारे कार्य कर रही हैं, वहीं ''हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी सड़क से बिल्कुल किनारे दामन बचाती और सम्हालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमटकर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर सहमी-सहमी धरती में आँख गाड़े, कदम-कदम बढ़ा रही थी।'' यह समूचा परिदृश्य तत्कालीन परतंत्र भारतीय समाज की हकीकत हमारे समक्ष उजागर करता है। इसके साथ ही कहानीकार यहाँ उन भारतीयों की भी खोज-खबर लेता है, जो अपने को आम भारतीयों से अलग समझता है। यह वर्ग ''भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजीदाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिवों को देखकर मुँह फेर लेते थे और

अंग्रेज को देखकर आँखें बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे- मानो भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।''

यह वर्ग तत्कालीन अंग्रेज शिक्षा नीति की उपज था। जो दिखने में तो भारतीय था, पर उसका मुख्य कार्य अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले आम जनता के शोषण में सहभागी बनना था। लेखक ने इस स्थिति पर व्यंग्य किया है, क्योंकि यह नवशिक्षित वर्ग अपने को साधारण भारतीय लोगों से अलग समझता है। इसे आज जनता के दुःख-दर्द से कोई वास्ता नहीं। विडम्बना यह है कि इस शिक्षित भारतीय वर्ग को उसकी तमाम खिदमत के बावजूद अंग्रेज अपने समान अधिकार देने को राजी नहीं। यह वर्ग अंग्रेजों का सहयोगी है और हर प्रकार की सेवा करने को हरदम तैयार रहता है। यह गुलाम मानसिकता उन लोगों की है जिनसे हम कुछ सार्थक करने की अपेक्षा रखते हैं। इनकी हालत यह है कि भारतीय लोगों को देखकर मुँह फेर लेते हैं और आडम्बर से जिन्हें खास लगाव है। लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि बनावट की जिंदगी जीने वाला यह नव मध्यवर्ग इस कदर संवेदनहीन बन चुका है कि उसे आम भारतीयों का दुःख-दर्द दिखाई नहीं पड़ता। अंग्रेजों को खुश रखना, इन्हें अपना परम कर्त्तव्य जान पड़ता है।

अभी आपने पढ़ा कि प्रस्तुत कहानी स्वतंत्रता पूर्व के वातावरण के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन हकीकत को उजागर करती है। जहाँ पृष्ठभूमि के रूप में परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा भारत है, जिसमें भारतीयों के आत्मसम्मान की कोई अहमियत नहीं। अशिक्षा, गरीबी, रुढ़ियाँ, दिखावा उसे दिन-पर-दिन खोखला करती जा रही है। अगर सुख-सुविधा, मनोरंजन इत्यादि साधन हैं भी तो वे सिर्फ अंग्रेजों के लिए। यह कहानी हमारे समक्ष इस सच को भी उजागर करती हैं कि इस गुलाम अवस्था के बावजूद नव मध्यवर्म अपने ही देशवासियों के हित से बेखबर होकर नितान्त संवेदनहीन होता जा रहा है। मानव मूल्यों का ह्रास इस कदर हो रहा है कि दूसरों का दुःख-दर्द भी उनके मनोरंजन का साधन प्रतीत होता है। यह कहानी मानव मूल्यों में आ रहे पतन को रेखांकित करती है।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में कहानीकार अपने मित्र के साथ नैनीताल घूमने के लिए गया है। जहाँ होटल 'डी पब' में रुकने के उपरांत शाम को वे बाहर घूमने जाते हैं और बहुत देर घूमने के बाद सड़क के किनारे की बींच पर बैठ जाते हैं। इस दौरान घूमने जाते हैं। इस दौरान समय बीतता जाता है और नैनीताल की सड़कों पर चहल-पहल कम होती जाती है। दोनों मित्रों में से एक को अपने होटल के कमरे में पहुँचने की जल्दी है और दूसरा कुछ देर और प्रकृति की सुन्दरता का दीदार करना चाहता है। अन्त में वे एक जगह बैठ जाते हैं। इस दरम्यान अंधेरे कुहरे में छाया के समान उन्हें कुछ चलता प्रतीत होता है। उसके और नजदीक आने पर वे देखते हैं कि एक दस वर्ष का बालक है जो नंगे पांव और केवल एक कमीज पहने हुए है। एक मित्र द्वारा उसे आवाज देकर बुलाने पर वह पास आता है। वह कहाँ जा रहा है, इस बारे में कुछ नहीं बता पाता। यह बालक घर की घोर गरीबी और कलह से तंग आकर अपना घर छोड़कर एक दोस्त के साथ नैनीताल आकर एक दुकार पर नौकरी करने लगता है। जहाँ उसे मालिक ने सभी काम करने पड़ते हैं और बदले में उसे जूठा भोजन और एक रूपया मिलता है। मालिक की निर्मम यातना के चलते उसका दोस्त दम तोड़ देता है। अब इस बालक को भी दुकान के मालिक ने निकाल दिया है जिसके चलते वह किसी ठिकाने की तलाश में भटक रहा है।

नैनीताल की सर्द रात में इस बालक का भटकना उन विसंगतियों से हमारा परिचय कराता है जिसके चलते किसी मासूम का बचपन छिन जाता है। वह बेबस और लाचार होकर किसी के यहाँ गुलामी की तरह काम करने को मजबूर हो जाता है। इसकी तुलना हम कहानी की पृष्ठभूमि में चित्रित हँसते-खेलते अंग्रेज बच्चों से करें तो यह प्रकरण और मार्मिक हो उठता है। लेखक ने बाल की दारुण मनःस्थिति का बखूबी अंकन किया है, जहाँ वह यह नहीं समझ पाता कि क्या करे? साथ ही मित्रों और बालक को बातचीत मध्यवर्गीय चरित्र में व्याप्त संवेदनहीनता का परिचय देती है। जब ये मित्र बालक को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हो जाते हैं तब वे उसे कोई काम दिलाने के लिए किसी दूसरे होटल में ठहरे हुए अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ भी बालक को शंका की निगाह से देखा जाता है, उस पर बदमाश, चोर आदि होने के आरोप लगाये जाते हैं। अन्त में दोनों मित्र यह निश्चय करते हैं कि इस बालक की तत्काल में कुछ सहायता की जानी चाहिए। पर इस दया भाव की हकीकत हमारे समक्ष तब उजागर हो जाती है जब वे पास में खुले पैसे न होने के चलते बालक को दस रूपये का नोटे देने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। सारी दया, संवेदना, सहानुभूति की कलई खुल जाती है। यहाँ लेखक ने मानव में व्याप्त संवेदनहीनता व अन्तर में व्याप्त द्वन्द्व का चित्रण किया है। जहाँ दया का प्रदर्शन मात्र का अपने दायित्व से छुट्टी पा ली जाती है। इस कुकृत्य के चलते बालक की उम्मीद धूल में मिल जाती है। केवल एक कमीज उसके शरीर से चिपटी पड़ी है, द्वन्द्व के चलते उसके दाँत किटकिटा रहे हैं। उसे इस हालात में छोड़कर दोनों मित्रों का अपने होटल के गर्म कमरे में चले जाना घोर अमानवीयता का परिचायक है। अगले दिन ये मित्र जब वापस जाने के लिए बस में सवार होते हैं तो उन्हें ठण्ड से एक बालक की मौत का पता चलता है। इस बालक की दर्दनाक मौत पर प्रकृति भी शर्मिन्दा है। वह उसके मृत शरीर पर बर्फ की पतली चादर डाल देती है, जिसे देखकर लगता है कि मनुष्य ने न सही पर प्रकृति ने उसके ऊपर कफन ओढ़ा दिया है। प्रस्तुत कहानी का यह मार्मिक अंत पाठक को सोचने पर विवश कर देता है कि क्या एक बालक का भूखे पेट रात की भयानक ठण्ड में ठिठुरकर मर जाना ही उसका भाग्य था?

आपने यह कहानी पढ़ने के दरम्यान यह जरूर ध्यान दिया होगा कि लेखक शब्दों का प्रयोग बहुत सधे अंदाज में करता है। इस प्रकार की नपी-तुली भाषा का प्रयोग जैनेन्द्र कुमार की खासियत है। प्रस्तुत कहानी में यह इस प्रकार हुआ है कि छोटे-छोटे संवादों व कथन के माध्यम से व्यक्ति मन की सारी परतें खुलकर हमारे सामने आ जाती है। कहानी में लेखक ने सधे अंदाज में 'अपना-अपना भाग्य' कथन के पाखण्ड की पोल खोली है। मध्यवर्गीय निकृष्ट सोच जिसका सहारा लेकर सारे मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं को दरकिनार कर देता है। एक बाल-मजदूर की विवशता व सामाजिक विद्रपताओं का चित्रण ध्यातव्य है। आर्थिक विसंगतियाँ और सामाजिक संवेदनहीनता किस प्रकार एक बालक को बाल मजदूर बना देती है, उनका हँसता-खेलता बचपन छीन लेती है, इसका विश्लेषण इस कहानी में किया गया है। आपने क्या कभी अपने आस-पड़ोस में ऐसे बाल मजदूरों को देखा है? क्या आपने सोचा है कि किन कारणों के चलते ये बच्चे अपना बचपन भुलाकर यह कार्य करने को मजबूर हैं।

अभ्यास प्रश्न

1.'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बालक क्यों अपना घर छोड़कर चला आता है?

2. दोनों मित्र क्यों बालक की कोई सहायता नहीं कर पाते?

3. बालक के साथी की मौत का कारण स्पष्ट कीजिए?

8.6 सारांश

'अपना-अपना भाग्य' कहानी जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से है। जिसमें एक बाल मजदूर को केन्द्र में रखकर सामाजिक पाखण्ड व संवेदनहीनता का मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण किया गया है। जहाँ सिर्फ भाग्य के नाम पर किसी की बेबस छोड़ देना घोर अमानवीयता का परिचायक है। यह वह नव मध्यवर्ग है जो बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, पर व्यक्ति की सहायता के नाम पर भाग्य की दुहाई देकर किनारा कर लेता है। यह परतंत्र भारत के नवशिक्षित वर्ग की हकीकत भी है जो अंग्रेजों को खुश रखने के लिए हर प्रकार के कार्य खुशी-खुशी करता है पर अपने ही देशवासियों की सहायता, सहयोग करने में स्वार्थी मनोवृत्ति आगे आ जाती है। इस कहानी में घटना का चित्रण प्रमुख न होकर व्यक्ति की मनोवृत्तियों के चित्रण पर बल दिया गया है। जहाँ भाग्य का पाखण्ड किसी को उसके हाल पर छोड़ देना का बहाना भर है और सहानुभूति सिर्फ दिखावे तक सीमित है। यह भाग्यवादी सिद्धान्त कहीं-न-कहीं उस क्षुद्र मानसिकता की परिचायक है जो हर घटना, विसंगिति को नियति से जोड़कर देखने की आदी है। जैनेन्द्र कुमार इस कहानी के माध्यम से 'अपना-अपना भाग्य' जैसे अन्धिवश्वास के पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं। जो कि समाज के प्रति उसके लगाव को भी रेखांकित करता है।

8.7 शब्दावली

मनोविश्लेषण	-	मन के विचारों की समीक्षा, चित्त विश्लेषण
मनोविज्ञान	-	मन की प्रकृति, वृत्तियों आदि का विवेचन करने वाला विज्ञान
सकपकाना	-	हिचकिचाना, चकित होना, लज्जा आदि के कारण घबराहट में पड़ जाना।
फिलॉसफी	-	दर्शनशास्त्र
स्तब्ध	-	गतिहीन, स्थिर
मनोवृत्ति	-	मन का विकार

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बालक द्वारा अपना घर छोड़ देने का प्रमुख कारण गरीबी और कलह का वातावरण है।
2. दोनों मित्रों द्वारा बालक की सहायता न कर पाने का प्रमुख कारण उनकी स्वार्थी मनोवृत्ति है, जिसके चलते वे बालक को दस रुपये का नोट तक देने में हिचकिचाते हैं।
3. बालक के साथी की मौत का प्रमुख कारण दुकान मालिक द्वारा दी जाने वाली यातना है।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैन, सं॰ निर्मला, जैनेन्द्र रचनावली-, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय, सं॰ योगेन्द्र नारायण, कथा भारती -, प्रकाशक-राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद।

8.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी- संस्करण-2002, लोकभारती, इलाहाबाद
2. यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति - वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश - आधार प्रकाशन, पंचकूला।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार का स्थान निर्धारित करें।
2. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में लेखक के मुख्य उद्देश्य पर प्रकाश डालिये।

इकाई 9'अपना-अपना भाग्य'- विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मानवीय मूल्यों के ह्रास का चित्रण
9.3.1 समाज में व्याप्त बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण
9.4 मध्यवर्गीय पाखण्ड का चित्रण
9.5 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का आशय
9.5.1 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की पृष्ठभूमि
9.6 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की भाषा-शैली।
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

जिस समय जैनेन्द्र कुमार का कथा साहित्य में बतौर लेखक आगमन हुआ वह स्वाधीनता संघर्ष का दौर था। जैनेन्द्र भी इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय भूमिका निभाते है। साथ ही रचनात्मक स्तर पर प्रेमचंद बहुत बड़ी लकीर साहित्य जगत में खींच चुके थे। अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से उन्होने समाज में चलने व पलने वाली विसंगतियों को स्वर प्रदान किया। यानी अपने कथा लेखन में प्रेमचन्द समाज को आधार बनाकर चलते है। इसी समय जैनेन्द्र का एक युवा लेखक के रूप में आगमन छायावादोत्तर कथा साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उनकी कहानी लेखन की अलग भावभूमि से प्रेमचन्द भी प्रभावित थे। यह प्रभाव इस कदर बढ़ता है कि दोनों लेखकों में गहरी मित्रता का भाव पनपता है। यह अनायास नहीं है कि कभी जैनेन्द्र कुमार को प्रेमचन्द ने हिन्दी का गोर्की कहा, यह प्रशंसा भाव एक स्थापित लेखक की उदीयमान के प्रति प्रशंसा है। इसके बावजूद तथ्य यह कि जैनेन्द्र कुमार एक अलग रास्ते व कहानी के अलग लहजे का चुनाव करते हैं। प्रेमचन्द्र के यहाँ, जहाँ समाज केन्द्र में है वही जैनेन्द्र के यहाँ व्यक्ति केन्द्र में है। विचारो की प्रधानता व बौद्विकता का आग्रह उनके यहाँ प्रमुख रूप से है। सन् 1929 मे प्रकाशित उनका प्रथम कहानी संग्रह 'फाँसी' मे आसपास के जीवन यथार्थ को आधार बनाया गया है, पर वहाँ भी विचारों की प्रधानता प्रमुख है। उनके उपन्यासों में भी व्यक्ति अंतर्जगत के सूक्ष्म विश्लेषण को आप देख सकते है। जहाँ पात्रों की संख्या व कथानक मे बहुलता न होकर चरित्र के आंतरिक मनोभावों के चित्रण पर ज्यादा जोर दिया गया है।

परख (1929), सुनीता (1935) और त्यागपत्र (1937) जैसे उपन्यास कथा साहित्य में जैनेन्द्र की उपस्थिति को मजबूत रूप मे दर्ज कराते है। उनका यह कथाकार रूप लोगों के आकर्षण का केन्द्र इसलिए भी बना क्योंकि उनमें अनोखापन, एक नया संस्कार था जो कि प्रेमचंद के विरोध में नहीं, पर उनसे अलग जरूर है। उनकी इस विशेषता के

प्रेमचंद भी कायल थे, प्रेमचंद के अनुसार-‘‘उनमे साधारण सी बात को भी कुछ इस ढँग मे कहने की शक्ति है, जो तुरन्त आकर्षित करती है। उनकी भाषा मे एक खास लोच है, एक खास अन्दाज है। "(आभारः जैनेन्द्र चनावली की भुमिका पृ. 6) यानी कि जैनेन्द्र का अन्दाज व कथा कहने के क्षेत्र मे नवीन कारीगरी से लोगों पर प्रभाव पड़ा। साथ ही यह भी कि उनके पात्र समाजिक न होकर वैयक्तिक हैं जिसके चलते उनके बारे में यह भी धारणा बनी कि वे घटनाओ के, जीवन-जगत के नहीं, पात्रों की वैयक्तिताओं के उपन्यासकार हैं। मनोविश्लेषणवादी कथाकर के रूप में चर्चित जैनेन्द्र अपनी रचना-प्रक्रिया का उद्घाटन अपने उपन्यास ‘सुनीता’ की भूमिका में इस प्रकार करते हैं - ‘‘कहानी सुनाना मेरा उदेश्य नहीं है, अतः तीन-चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है, इस विश्व के छोटे से छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य का दर्शन भी करा सकते हैं, जो ब्रह्मांड है वही पिंड में भी है। इसलिए अपने चित्र के लिए बड़े कैनवास की जरूरत मुझे नहीं हुई। थोड़े में समग्रता क्यों न दिखाई जा सके। आप देखें तो पाएंगे कि उनका अपने रचनाकर्म के शुरुआती दौर में दिया गया यह वक्तव्य य उनके समूचे कथा लेखन मे प्रसारित होता है। उनका लक्ष्य पिण्ड मे ब्रह्मांण्ड व सीमीत कैनवास में समग्रता का दर्शन कराने से है, जहाँ वे प्रखर बौद्धिक व चिन्तक ज्यादा मालूम पड़ते है। जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य में घटनाओं और चरित्रों से भरे-पूरे संसार की रचना नहीं करते, बल्कि उनके यहाँ व्यक्ति के अर्न्ततम तक जाने के बेचैनी है। पात्र भी उनके यहाँ गिने-चुने हैं, जिससे कि कहानी को ठोस रूप दिया जा सके। विवरण में जाने से उनको परहेज है एवं कम से कम शब्दों से अपनी बात कह देने का प्रयास भी। ‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी में यह प्रवृत्ति आप देख सकते है

‘अपना अपना भाग्य’ कहानी जैनेन्द्र कुमार की महत्वपूर्ण कहानियों मे से है, जिसमें एक छोटी सी घटना व दो-तीन पात्रों के आधार पर कहानी रची गई है कहानी की शुरूआत नैनीताल के आजादी पूर्व वातावरण को चित्रित करने से आरम्भ होती है । आगे चलकर दो मित्रो व एक बच्चे के भाव चित्रण व मानसिक क्रिया-व्यापार प्रस्तुत करने तक सीमित हो जाती है। घटनाओं की बहुलता व पात्रों की अधिकता यहाँ न होकर मानव के मनोभावों व उसमें निहित स्वार्थ को उभारना प्रमुख उद्देश्य है। साथ ही भाग्यवादिता के प्रति प्रश्नचिह्न भी खड़ा किया गया है, जो कि लोगो के लिए अपने द्वारा गलत कार्यों को सही ठहराने का बहाना भर है। जैनेन्द्र का अपने पुर्ववर्ती लेखको से अलग यह अंदाज छायावादोत्तरकालीन कथाकारों मे अगली कतार में ला खड़ा कर देता है। ।

9.2 उद्देश्य

बहुचर्चित कहानीकार जैनेन्द्र कुमार की कहानी ‘अपना अपना भाग्य’ पर यह आधरित है। मध्यवर्गीय समाज में छिजते जा रहे मानवीय संवेदन व स्वार्थ भाव को सहज अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। भाग्यवाद की कोरी निरर्थकता को स्पष्ट किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपः

- स्वतंत्रता पूर्व भारतीयों की स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानवीय संवेदना के दिन-पर-दिन हो रहे क्षरण के कारणों पर विचार कर सकेंगे।
- बाल मजदूरी की अमानवीय प्रथा के यथार्थ को रेखांकित कर सकेंगे।
- मध्यवर्गीय दोहरी जिन्दगी के पाखण्ड पर प्रकाश डाल सकेंगे।

- उन स्थितियों को स्पष्ट कर सकेंगे जिसके चलते एक बालक अपना बचपन भूलकर मजदूरी करने पर विवश हो जाता है।
- झूठी सहानुभूति की निरर्थकता पर टिप्पणी कर सकेंगे।

9.3 मानवीय मूल्यों के पतन का चित्रण

अपने इकाई 11 को पढ़ने के दरम्यान देखा होगा कि किस प्रकार एक बालक ठंड में ठिठुरकर मौत की नींद सो जाता है। इस इकाई में हम विस्तार से उस पर चर्चा करेंगे। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी पर सर्वप्रथम हम इसके शीर्षक पर विचार करें तो पाएंगे कि अक्सर हम इस शब्दों का प्रयोग करते हैं। किसी के साथ कुछ बुरा या अच्छा होते देखकर हम अक्सर उसे उसके भाग्य से जोड़ देते हैं। पर आपने सोचा है कि अच्छा और बुरा होना क्या भाग्य की ही देन है? प्रस्तुत कहानी इस बिन्दु पर विचार करने हेतु हमें प्रेरित करती है। शीर्षक की दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक अर्थवत्तापूर्ण है और यह पूरी कहानी को स्पष्ट करने में सहायक है। शीर्षक की महत्ता इस बात में है कि वह पूरे भाव व विचार को कुछ शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त कर सके। साथ ही शीर्षक पाठक के भीतर उत्सुकता उत्पन्न करने वाला भी होना चाहिए, जिसके चलते वह कहानी पढ़ने से अपने आप रोक न सके। इस प्रकार शीर्षक समूची कथा का निचोड़ तो होता ही है, साथ ही पाठकों में उत्सुकता जगाने वाला भी होता है। आपने पूरी कहानी पढ़ी होगी, आपने देखा होगा कि भाग्य के नाम पर किस प्रकार कुछ लोग बदतर जिन्दगी जीने को मजबूर हैं या कर दिये गये हैं। वहीं कुछ लोग झूठी सहानुभूति दिखाकर अपनी सुख-सुविधा में मग्न हैं। 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक इस दृष्टि से अपने आप में परिपूर्ण है।

कथा साहित्य में जैनेन्द्र कुमार की चर्चा एक मनोविश्लेषणवादी रचनाकार के रूप में होती हैं। उनके यहाँ बौद्धिकता का आग्रह प्रबल है यानी कि वे बंधी-बधाई लीक पर सोचने की हिमायती नहीं है। वे तर्क व विचार की कसौटी पर किसी भाव या विचार को ग्रहण करते हैं। साथ ही साथ मानव चरित्रों की जटिलता का उद्घाटन भी उनके यहाँ प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में आपने देखा होगा कि पात्रों की संख्या बहुत कम है। तीन पात्र प्रमुख हैं जिनके वार्तालाप व क्रिया व्यापार से यह कहानी आगे बढ़ती है। दो सैलानी मित्र घूमने के लिए नैनीताल में आये हुए हैं। मैं जहाँ आधी रात के समय उनकी मुलाकात ठण्ड में ठिठुरते दस-ग्यारह साल के एक बालक से होती है। वह भी एक ऐसे समय जब दोनों मित्र सूनसान रात में प्रकृति की छटा निहाने में मग्न हैं। जिससे हमें इनके संवेदनशील होने का परिचय प्राप्त होता है। चुपचाप बैठे होने के दौरान एक मित्र को लगता है कि कोई आ रहा है। रात के अंधेरे में एक काली-सी मूरत उनकी ओर बढ़ी आयी है- ''तीन गज की दूरी से देख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर। एक मैली सी कमीज लटकाये है। पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे हैं, और वह न जाने कहाँ जा रहा है- कहाँ जाना चाहता है? उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।''? यह दस बरस के बालक का चित्र है जिसका बचपन मानो छिन गया है, माथे पर अभी से झुर्रियाँ पड़ी प्रतीत होती हैं। इस बालक का कोई घर-द्वार नहीं है, उसे कुछ सूझ नहीं रहा है। इस बालक पर तरस खाकर कोई करम दिलवाने हेतु दोनों मित्र उसे अपने एक वकील मित्र के यहाँ ले जाते हैं। यह वकील मित्र भी

छुट्टियाँ बिताने नैनीताल आये हुए हैं। वे इस पहाड़ी बालक को शक की निगाह से देखते हैं और वापस अपने कमरे में सोने चले जाते हैं। वकील साहब का प्रकरण ऐसे लोगों के चरित्र को उजागर करता है जिन्हें दूसरे के दुःख-दर्द से कोई मतलब नहीं। यह सुविधाभोगी वर्ग के प्रतिनिधि हैं।

वकील मित्र द्वारा बालक को कोई काम देने से इनकार करने के बाद दोनों मित्रों के सामने बड़ी समस्या आ खड़ी होती है कि अब इस बालक का क्या किया जाये। वे अब जल्द-से-जल्द इस बालक से अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं। इस संबंध में दोनों के बीच हुआ वार्तालाप झूठी सहानुभूति की परतों को उधेड़ देता है। ''वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराशाभाव से हाथ बाहर कर मेरी ओर देखने लगे।"

''क्या है,''

''इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था'', अंग्रेजी में मित्र ने कहा- ''मगर दस-दस के नोट हैं।''

''नोट ही शायद मेरे पास हैं, देखूँ?''

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। वे फिर अंग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा- ''तब ?''

मैने कहा- ''दस का नोट ही दे दो।'' सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे। -''अरे यार! वजट बिगड़ जायेगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं हैं।''

''तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।''- मैने कहा।

उपरोक्त कथोपकन में आपने देखा कि किस प्रकार दोनों मित्र बालक को चाह कर भी कुछ नहीं दे पाते। पर क्या वे वास्तव में उसके लिए कुछ करना चाहते हैं, इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। लेखक ने बड़े सहज अंदाज में इनकी सहानुभूति व संवेदना की कलई खोल दी है। बच्चे के सामने अंग्रेजी में किया जाने वाला वार्तालाप भी इस बात का सूचक है कि उन्हें अपनी पोल खुलने का डर है। वे यहाँ भी चौकन्ने हैं कि बच्चे के सामने उनकी हैसियत और उनकी झूठी सहानुभूति का पता न चले। यह मध्यवर्गीय चरित्र में आये मानवीय मूल्यों में गिरावट का प्रतीक है। प्रस्तुत कहानी में सारा दया भाव दस रुपये के सामने दब जाता है और बालक को मिलती है झूठी सहानुभूति और आश्वासन। बालक असमय ठंड में ठिठुरकर मौत की नींद सो जाता है। मौत की खबर पर दोनों मित्रों की प्रतिक्रिया यही है कि भाग्य को यही मंजूर था। पर सवाल यह है कि क्या बालक की मौत का जिम्मेदार भाग्य को ठहराया जा सकता है? आपने पूरी कहानी पढ़ी है, क्या आपको लगता है कि यह सच है। लेखक इस कथन के पीछे के पाखण्ड को उजागर करता है, साथ ही मध्यवर्ग में संवेदना व मूल्यों में आ रही गिरावट को भी रेखांकित करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. 'अपना-अपना भाग्य' कथन प्रस्तुत कहानी में किसके लिए कहा गया है?
2. प्रस्तुत कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर विचार करें।
3. दोनों मित्र बालक की किसी प्रकार की सहायता क्यों नहीं कर पाते?

9.3.1 समाज में व्याप्त बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण

आपने अपने आस-पास बच्चों को मजदूरी करते हुए देखा होगा। क्या आपने गौर किया कि वह ऐसा क्यों करते हैं, क्या उनकी इच्छा खेलने व पढ़ने की नहीं होती। क्यों सिर्फ हर जगह उन्हें दुत्कार व मार ही मिलती है। प्रस्तुत कहानी में एक ऐसा ही बालक है जिसका बचपन छिन गया है, वह अमानवीय स्थिति में मजदूरी करने को विवश है। यह दस बरस का बालक आधी रात को कड़ाके की ठण्ड में किसी आश्रय की तलाश में भटक रहा है। उसे कुछ नहीं सूझ रहा है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ''वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।'' एक ऐसा विकट वर्तमान जहाँ उसके लिए कोई सहारा नहीं है, भूखे, अधनगें वह नैनीताल की ठण्ड में न जाने किसकी तलाश कर रहा है। दोनों मित्रों और बालक के बीच का संवाद ध्यातव्य है-

''तू कहाँ जा रहा है रे?''

उसके अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

''दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?''

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

''कहाँ सोयेगा?''

''यहीं कहीं।''

''कल कहाँ सोया था?''

''दुकान पर।''

''आज वहाँ क्यों नहीं?''

''नौकरी से हटा दिया।''

''क्या नौकरी थी?''

''सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।''

यहाँ आपने इस पर भी ध्यान दिया होगा कि कहानी में किसी पात्र का नाम नहीं दिया गया है। ऐसे पात्र आपको अपने आस-पास हर जगह मिल जाएँगें। यहाँ बालक का ऐसे बाल मजदूरों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है जो आर्थिक दुश्चिंता व मजबूरी के कारण मजदूरी करने को विवश है। जहाँ पर अमानवीय यातना सहने के दौरान कितने बच्चों की मौत भी हो जाती है, पर तथाकथित सभ्य समाज का इससे कुछ लेना-देना नहीं। प्रस्तुत कहानी का बालक घर से भाग आया है। भागने का कारण पूछने पर वह बताता है कि- ''मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं- सो भाग आया, वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया।यानी गरीब परिवार, सदस्यों की अधिक संख्या, अशिक्षा आदि प्रमुख कारण हैं जो बाल मजदूरी को बढ़ावा देते हैं। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बाल मजदूरी की अमानवीयता का चित्रण तो किया गया है, साथ-ही-साथ समाज का इन छोटे बालकों के प्रति रवैये व कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र कुमार की खासियत यह है कि वे बहुत नपे-तुले शब्दों व सीमित पात्रों की सहायता से मानव के अंतर्जगत का विश्लेषण करते हैं। उन रहस्यों की तलाश करते हैं जिन्हें मानव ने तरह-तरह के आदर्शवादी कथन रूपी पर्दों से ढक रखा है। प्रस्तुत कहानी में एक बालक भाग्य के आडम्बर पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि एक नन्हें बालक का मजदूर रूप में होना उसका भाग्य नहीं वरन् सामाजिक व आर्थिक विसंगति है। जहाँ कुछ लोग अपने हित साधन के लिए इनका शोषण करते हैं। यहाँ मानवीयता की भावना नदारद है। इस मध्यवर्गीय चरित्र की पड़ताल लेखक का प्रमुख उद्देश्य है जो अपनी सुख-सुविधा के लिए किसी की मौत पर भी तमाम तरह की झूठी रुढ़ियों का प्रयोग करता है। जैनेन्द्र के यहाँ चूंकि विचारों की प्रधानता है, जहाँ तर्क के आधार पर किसी चरित्र को देखने और दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी के चलते आप को कहानी पढ़ते हुए कभी-कभी देखने और दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी के चलते आप को कहानी पढ़ते हुए कभी-कभी यह भी प्रतीत होता होगा कि एक तटस्थ भाव से लेखक चरित्रों की विशेषताओं को उद्घाटित कर रहा है। फिर भी हमें यह यह पता जरूर चल जाता है कि लेखक की सहानुभूति किसके प्रति है। यानी जैनेन्द्र कुमार अपनी कहानियों के माध्यम से मानव मूल्यों में आ रही गिरावट के प्रति चौकन्ने हैं और जो शोषित हैं, उसके भविष्य को लेकर चिंतित भी नजर आते हैं।

अभ्यास प्रश्न

(1) उन कारणों पर प्रकाश डालिये जिनके चलते बालक अपने घर से भागकर नैनीताल मजदूरी करने आता है?

9.4 मध्यवर्गीय पाखण्ड का चित्रण

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में दो मित्रों के माध्यम से मध्यमर्ग के झूठ व पाखण्ड का चित्रण भी किया गया है। यहाँ आप देखेंगे किस प्रकार दोनों मित्रों की झूठी सहानुभूति तब खुलकर सामने आ जाती है। जब उनमें से किसी की हिम्मत बालक को दस रुपये देने की नहीं होती। इनका सारा प्रकृति प्रेम ढोंग प्रतीत होने लगता है। बालक को इनके द्वारा मिलता है तो सिर्फ आश्वासन जो उसे जिन्दा नहीं रख पाती। जैनेन्द्र कुमार अपने कथा लेखन में जीवन में व्याप्त समस्याओं के जड़ की तलाश करते हैं। स्वार्थ से परिपूर्ण मनोवृत्ति किस प्रकार मनुष्य को अपनी गिरफ्त में ले चुकी है कि इन मित्रों को यही लगता है कि जाने दो, यह दया की इस जमाने में बहुत है। उसके बाद बालक को अगले दिन

'होटल डी पब' में आने को कहकर सोने चल देते हैं, कहीं-न-कहीं इनके मन में अपने कृत्य से अपराधबोध भी है। पर वे उससे दार्शनिक अंदाज का सहारा लेकर दरकिनार करने का प्रयास करते हैं-

''ठंडी साँस खींचकर मित्र ने कहा- ''कहाँ सोएगा?''

''यहीं कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे, किसी दुकान की भट्टी में।''

बालक फिर उसी प्रेम-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। दवा तीखी थी- हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कदा ''भयानक शीत है। उसके पास कम- बहुत कम कपड़े।''

'यह संसार है यार!'' मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनायी- ''चलो, पहले बिस्तर में गर्म तो हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।''

उदास होकर मित्र ने कहा- ''स्वार्थ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, या बेहयाई।''

उपरोक्त कथन मध्यवर्गीय चरित्र को उजागर करता है, जहाँ सारी सहानुभूति के बावजूद वे बालक के लिए कुछ नहीं कर पाते। स्वार्थ यहाँ प्रबल हो जाता है, पर मन में कहीं-न-कहीं कुछ न कर पाने का अफसोस भी है। जैनेन्द्र कुमार ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को यहाँ उजागर किया है, जो मध्यवर्ग की नियति प्रतीत होता है। ''यह संसार है यार'' का दार्शनिक अन्दाज बड़े सहज ढंग से सारी हकीकत से हमें रूबरू करा देता है। यह इस स्वार्थी मानसिकता को भी स्पष्ट करता है कि दुनियां में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, हमें उसे लेकर ज्यादा चिन्तित नहीं होना चाहिए। किसी के लिए कुछ कहने के बात आने पर हम उसे उसके हालात पर जस का तस छोड़ देते हैं। झूठा अहंकार, निर्ममता, दिखावटी सहानुभूति का चित्रण प्रस्तुत कहानी में प्रमुख रूप से हुआ है। कहानी का अंत पाठकों को नियति पर सोचने के लिए विवश करता है। जब वे दोनों मित्र वापस जाने के लिए ''मोटर में सवार हाते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपकार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठी और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गयी थी। मानों दुनियां की बेहयाई ढँकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध का दिया था।

सब सुना और सोचा- अपना-अपना भाग्य।'

यह अंत मानव की निष्ठुरता व उसके स्वार्थी मनोवृत्ति को उजागर करता है। साथ ही भाग्य के विषय में एक प्रश्न भी हमारे विचार हेतु प्रस्तुत करता है कि क्या बालक की मौत की जिम्मेदारी भाग्य पर है या उस स्वार्थी मनोवृत्ति पर जो आदमी की आदमी नहीं समझने देती। जहाँ गरीब आदमी की हैसियत कीड़े-मकोड़ों से भी बदतर बना दी गई है।

प्रकृति द्वारा बालक के शरीर पर बर्फ की चादर ओढ़ा देना मानवीय मूल्यों में हो रहे पतन का सूचक है। बालक की इस प्रकार की कठोर जिन्दगी व उसकी असमय मौत गरीबी, मध्यवर्गीय अवसरवादिता व निष्ठुरता की देन है।

अभ्यास प्रश्न

(1) प्रस्तुत कहानी के आधार पर बालक का चरित्र चित्रण कीजिए।
(2) उन कारणों पर प्रकाश डालिये जो बालक की मौत के जिम्मेदार हैं।

9.5 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का आशय

'अपना-अपना भाग्य' कहानी में जैनेन्द्र कुमार का उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज की निष्ठुरता और अमानवीयता का उद्घाटन करना है। आपने महसूस किया होगा कि हमारे समाज में व्यक्ति की सोच आत्मकेंद्रित होती जा रही है। उसे इस बात से काई फर्क नहीं पड़ता कि क्या आस-पड़ोस में घट रहा है। जीवन की भाग-दौड़ में किसी के पास इतनी फुर्सत नहीं है कि वह दूसरों के दुख-दर्द, परेशानी को महसूस कर सके। यह प्रवृत्ति मानवीयता के ह्रास की सूचक है। जिसमें सिर्फ अपना हित या अपने बचाव के लिए हर प्रकार के हथकंडे अपनाना जायज ठहराया जाता है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी भी इस संवेदना के क्षरण को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करती है। मध्यवर्गीय पात्रों की दिखावटी सहानुभूति, मानसिक द्वंद्व व स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण यहाँ प्रमुख है। जिसके चलते एक बालक की निर्मम मौत प्रस्तुत कहानी में दिखाई गई है। इसके बावजूद भी यह दोनों मित्र इसका दोषी अपने आप को न मानकर बालक के भाग्य से जोड़ देते हैं। यह मानव के नितान्त संवेदनहीन होते जाने का लक्षण है।

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक बालक किस प्रकार गरीबी व शहरी लोगों की निष्ठुरता का शिकार होकर मौत का शिकार बन जाता है। पर यह मौत स्वाभाविक मौत न प्रतीत होकर हत्या नजर आती है। यानी कि बालक मरता नहीं बल्कि मार दिया जाता है। तथाकथित समाज के उन सभ्य लोगों द्वारा जो मानव को समान भाव से देखने का दंभ भरते हैं। 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक यहाँ एक प्रतीक के रूप में हे, जिसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य के साथ जो भी घटित होता है, वह उनके भाग्य पर निर्भर करता है। पर पूरी कहानी पढ़ने के बाद आप इस कथन को सहजता से अस्वीकार कर देंगे। कारण कि वर्तमान परिदृश्य में भाग्य जैसी बात बेमानी है। इस कहानी में तो इसकी निरर्थकता से आप बखूबी परिचित होंगे। लेखक का मंतव्य यह है कि किसी अनाथ, गरीब की मौत को उसके भाग्य से जोड़ देना सभ्य समाज की निर्ममता है, जो यह कहकर अपने दायित्व से छुटकारा पा लेना चाहता है। समाज के प्रति उसके भी कुछ कर्त्तव्य हैं इस विचार से उन्हें कोसों दूर रखता है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में बाल-मजदूर की अमानवीय स्थिति व मध्यवर्ग में व्याप्त संवेदनशीलता का उद्घाटित किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कहानी अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हैं

9.5.1 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की पृष्ठभूमि

आपने कहानी को पढ़ने के दौरान यह महसूस किया होगा कि इसका वातावरण आजादी पूर्व का है। जब अंग्रेजों का शासन था और सारी सुख-सुविधाओं पर उनका अधिकार था। यहाँ पर तीन तरह के लोग हैं, एक तो अंग्रेज

जो अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, दूसरे पढ़े लिखे भारतीय जो अंग्रेजों के आगे नतमस्तक है, परन्तु गरीब भारतीयों का शोषण करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं, तीसरा वर्ग उनका है जिसका शोषण होता है। साथ ही लेखक ने अंग्रेज स्त्रियों और भारतीयों स्त्रियों के चित्रण के माध्यम से इन दोनों के बीच के अन्तर को भी रेखांकित किया है। यानी कि यहाँ महिला, पुरुष, बच्चे सब हैं। नैनीताल के इस वातावरण में कहीं अधिकार गर्व से तने और अकड़कर चलने वाले अंग्रेज, हैं तो वहीं अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को भूलकर घोड़ों की बाग थामे चलने गरीब पहाड़ी भी है। कहीं भागते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे तो वहीं पीली-पीली आँखे फाड़े, पिता की ऊँगली थामकर चलने वाले भारतीय नौनिहाल भी हैं। अपने बच्चों के साथ हँसते-बिलखते व नौका विहार का आनन्द उठाते। अहंकारी अंग्रेज जोड़ों का खुलापन परतंत्र भारत की तस्वीर प्रस्तुत करता है। जहाँ, ''अंग्रेज-रमणियाँ थी जो धीरे-धीरे नहीं चलती थीं, -तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में मौत आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठा सकती थीं और घोड़े के साथ ही साथ जरा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक, निरापद इस प्रवाह में अपने स्थान को जानती हुई सड़क पर चली जा रही थी।''

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी सड़क किनारे सहमी-सिमटी सी दामन बचाना चली जा रही है। इसके साथ ही रंग से भारतीय पर मानसिकता से अंग्रेज वर्ग का एक नमूना भी यहाँ लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो अंग्रेजों जैसा होने की इच्छा पाले हुए है। अंग्रेजों का अंधानुकरण जिनका परम पुनीत कर्तव्य है और जो अंग्रेज वर्ग की हर प्रकार से सेवा करने को तत्पर है, पर अपने देशवासियों को वे उपेक्षा की नजर से देखते हैं। साथ ही उनके शोषण में अंग्रेजों के सहभागी भी हैं। प्रस्तुत कहानी में तत्कालीन सामजिक परिवेश साकार हो उठा है। आप इसे पढ़कर नैनीताल के स्वतंत्रता पूर्व वातावरण का सहज अन्दाजा लगा सकते हैं। साथ ही अंग्रेजों के समक्ष भारतीयों की स्थिति पर टिप्पणी कर सकते हैं। अशिक्षा एवं रुढ़ियों में जकड़े भारतीय समाज की जीवंत झाँकी लेखक ने कहानी के पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत की है।

9.6 'अपना-अपना भाग्य'कहानी की भाषा-शैली

'अपना-अपना भाग्य' जैनेन्द्र कुमार की महत्वपूर्ण कहानियों में से है। जिससे हमें उनकी कहानी-कला का परिचय प्राप्त होता है। आपने प्रेमचंद की कोई न कोई कहानी जरूर पढ़ी होगी। क्या आपको प्रेमचंद व जैनेन्द्र की कहानियों में कुछ अन्तर दिखाई देता है। आपने देखा होगा कि प्रेमचन्द की कहानी में जहाँ घटनाओं के चित्रण व वर्णन पर अधिक जोर है, वहीं जैनेन्द्र के यहाँ व्यक्ति मन की हलचलों को अभिव्यक्त किया गया है। इकाई के आरंभ में जैसा कि कहा गया कि जैनेन्द्र के यहाँ बौद्धिकता व मनोविश्लेषण की प्रधानता है। वे अपनी कहानियों में मनुष्य में निहित आन्तरिक प्रवृत्तियों को अध्ययन का विषय बनाते हैं।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी भी उनकी प्रारम्भिक कहानी होने के बावजूद इन गुणों से युक्त है। प्रस्तुत कहानी में घटनाएँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि चरित्र चित्रण। चरित्र-चित्रण के दरम्यान जैनेन्द्र कुमार पात्रों के

क्रियाकलाप का संक्षिप्त विवरण देते हैं, साथ ही उनके यहाँ शब्दों का कम-से-कम प्रयोग करने की सजगता भी दिखाई देती है। अपने महसूस किया होगा। खासतौर पर दोनों मित्रों व बालक के संवाद के दरम्यान कि संवाद छोटे-छोटे हैं। उदाहरण के लिए-

''वकील साहब!''

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। कश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

''आ-हा फिर आप! कहिये।''

''आपको नौका की जरूरत थी न? - देखिए यह लड़का है।''

''कहाँ से ले आये? - इसे आप जानते हैं?''

''जानता हूँ- यह बेईमान नहीं हो सकता।''

''अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं- उठा लायें कहीं से- लो जी, यह नौकर लो।''

''मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।''

''आप भी... जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।''

''आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ।''

''मानें क्या खाक ? - आप भी... । जी अच्छा मजाक करते हैं..... अच्छा अब हम सोने जाते हैं।''

उपरोक्त संवाद संक्षिप्त होने के बावजूद सारी वस्तुस्थिति व मनोभावों का स्पष्ट कर देता है। जो कि मध्यवर्गीय शुद्ध मानसिकता को अभिव्यक्त करते हैं। ऐसा ही वार्तालाप बालक को कुछ रुपये देने के संदर्भ में दोनों मित्रों के बीच में भी आपने देखा होगा। इस कहानी में घटनाएँ बहुत ज्यादा नहीं हैं। एक बालक की ठंड में ठिठुरकर होने वाली मौत इसमें प्रमुख घटना है। पर इस घटना के पीछे की हकीकत को उजागर करना लेखक का प्रमुख उद्देश्य है। उनकी यह कहानी बाहरी घटनाओं का चित्रण नहीं करती जितना कि भीतरी दबावों का चित्रण करती है। पात्रानुकूल संवाद भी उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है जो कि पात्रों की मनःस्थिति जानने में सहायक है।

प्रस्तुत कहानी में मानव मन में चलने वाले अंर्तद्वंद्व का कुशल अंकन हुआ है। बालक के हाव-भाव व कथन द्वारा उसकी मनःस्थिति का पता चलता है। दोनों मित्रों के मन में चलने वाले अंर्तद्वन्द्व इस कहानी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह द्वंद्व की स्थिति बालक के चित्रण में भी हम देख सकते हैं।

भाषा के स्तर पर यह कहानी सहज व सरल है। सरल शब्द, छोटे-छोटे वाक्यों व संक्षिप्त संवाद व आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है। यह भाषा और कहानी कहने का अंदाज सीधे पाठकों के मन में उतरता चला जाता है। कभी-कभी मुख्य अर्थ गौण होकर अन्य संदर्भों से हमारा साक्षात्कार करा देता है। यह अर्थ की बहुस्तरीयता जैनेन्द्र के गहरे पर्यवेक्षण, अनुभव व दर्शन की उपज है।

अपना-अपना भाग्य' कहानी का अंत भी कथा-कौशल की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहानी का अंत पाठकों के समय एक प्रश्न उपस्थित कर देता है कि कैसा भाग्य, किसका भाग्य? इस प्रकार इस कहानी का यह आकस्मिक अंत इसे और रोचक बना देता है। साथ ही इसका आरंभ भी प्रभावोत्पादक है। कहानी की शुरुआत कहाँ से हो और उसका अंत किस बिन्दु पर हो यह कौशल किसी कहानीकार को महत्वपूर्ण बनाता है। जैनेन्द्र कुमार के यहाँ इस कौशल का बखूबी निर्वाह हुआ है।

प्रस्तुत कहानी के शीर्षक पर हम विचार करें तो पहली नजर में ही 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक पाठक में कौतुहल उत्पन्न करने वाला है। साथ ही यह शीर्षक पूरी कहानी के मर्म को भी उद्घाटित करता है। यहाँ पर शीर्षक एक सामान्य शब्द मात्र न होकर विशेष अर्थ ग्रहण कर लेता है। किसी की मौत व सुख-सुविधा को उसके भाग्य से जोड़ देना साधारण सी बात है। पर यह कहानी इस बात की पड़ताल करती है कि भाग्य की बात करना अनुचित ही नहीं अमानवीय भी है। साथ ही यह उद्घाटित भी कि ऐसे शब्दों का प्रयोग हम अपनी कमजोरियों एवं कमियों को छुपाने के लिए ज्यादा करते हैं। एक गैरजिम्मेदारी का भाव यहाँ प्रमुख है जो सिर्फ अपनी सुख-सुविधा पर जोर देता है। शीर्षक दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' उचित जान पड़ता है जो कि कहानीकार की महत्ता को रूपायित करता है।

9.7 सारांश

आपने जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित कहानी 'अपना-अपना भाग्य' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। आपने महसूस किया होगा कि यह कहानी अपने सीमित पात्रों के माध्यम से मानव चरित्र का विश्लेषण करती है। कहानी एक बाल मजदूर के ईर्द-गिर्द घूमती है, जो परिवार की घोर गरीबी के चलते नैनीताल आकर व एक दुकान पर मजदूरी करता है। किसी कारणवश मालिक इसे नौकरी से निकाल देता है। रात को अधनंगे अकेले भटकने के दौरान इसकी मुलाकात दो सैलानी मित्रों से होती है जो रात में नैनीताल की खूबसूरती का आनंद उठा रहे हैं। इस बालक से वे कई तरफ का सवाल पूछते हैं और उसकी सहायता के लिए उसे किसी दूसरे होटल में ठहरे अपने वकील मित्रों के पास ले जाते हैं। पर वहाँ से भी बालक को कोई मदद नहीं मिलती। अंत में दोनों मित्र खुद उसकी सहायता के लिए कुछ पैसे देना चाहते हैं। पर पास में खुले पैसे न होने के चलते वे बालक से कल मिलने का वादा करने अपने होटल में सोने चले जाते हैं इधर रात में ठंड से ठिठुरकर बालक की मौत हो जाती है। दोनों मित्रों को जब इसकी सूचना मिलती है तो वे यह कहकर अपने को सांत्वना देते हैं कि यही उसके भाग्य में लिखा था।

प्रस्तुत कहानी में घटनाएँ न के बराबर हैं, यहाँ चरित्र चित्रण पर ज्यादा जोर है। जैनेन्द्र कुमार यहाँ मानव मन के विश्लेषण में रत दिखाई देते हैं। आपने संवादों को पढ़ते समय यह ध्यान दिया होगा कि पात्रों की मनोस्थिति उनके कथनों से स्पष्ट होती है। प्रकारांतर में यह कहानी मानवीय संबंधों में आ रही गिरावट व संवेदनहीनता को उजागर करती

है। मानवीय संवदेना से रचित मध्यमवर्गीय समझ की क्षुद्र मानसिकता को इस कहानी में उजागर किया गया है। यह समाज एक बालक की भूख, गरीबी से हुई मौत को भी 'अपना-अपना भाग्य' कहकर पल्ला झाड़ लेता है। भाग्य की निरर्थकता मनुष्य की निर्ममता का चित्रण इस कहानी का प्रमुख उद्देश्य है, जिससे यह कहानी सफल साबित होती है।

9.8 शब्दावली

निरुद्देश्य - बिना किसी उद्देश्य के।
पार्श्व - किनारा
सुरम्य - रमणीय, मनोहर
अनुपम - उपमारहित, सर्वोत्तम
सधैर्य - धैर्ययुक्त
एकनिष्ठ - एक से ही अनुराग रखने वाला।
प्रतिष्ठा - सम्मान, गौरव, मान-मर्यादा।
निःशंक - जिसे किसी प्रकार का भय न हो।
निरापाद - आपत्ति से रहित, सुरक्षित
परिवेष्टन - चारों ओर से घेरने की वस्तु
निठुराई - क्रूरता, दयाहीनता।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'अपना-अपना भाग्य' कथन प्रस्तुत कहानी में बालक की मौत पर दोनों मित्रों द्वारा कहा गया है।
2. 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक पूरी कहानी के मूल भाव को स्पष्ट करता है।
3. बालक की सहायता न कर पाने का प्रमुख कारण मित्रों की स्वार्थी मनोवृत्ति है।
4. घर के कलह व गरीबी के चलते बालक मजदूरी करने को विवश होता है।
5. गरीबी व मध्यवर्गीय संवेदनहीनता बालक की ही मौत के जिम्मेदार हैं।

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन, सं॰ निर्मला, जैनेन्द्र रचनावली - प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
2. पाण्डेय, सं. योगेन्द्र नारायण, कथा भारती - प्रकाशक-राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद

9.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नयी कहानी -संस्करण-2002, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. यादव, राजेन्द्र, कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति- वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश- आधार प्रकाशन, पंचकूला

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. भाषा और संवाद की दृष्टि से 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10-जैनेन्द्र कुमार: परिचय एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 जीवन परिचय/रचनाएँ

10.3.1 जीवन परिचय
10.3.2 रचनाएँ
10.4 कृतित्व
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार (२ जनवरी, १९०५- २४ दिसंबर, १९८८) का विशिष्ट स्थान है। वह हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया है। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं।

10.2 उद्देश्य

बी0ए0एच0एल0-101 की यह 19वीं इकाई हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- जैनेन्द्र कुमार के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के रचना संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों से परिचित हो सकेंगे।

10.3 जीवन परिचय/रचनाएँ

10.3.1 जीवन परिचय

जैनेन्द्र कुमार का जन्म २ जनवरी, सन १९०५, में अलीगढ़ के कौड़ियागंज गांव में हुआ। उनके बचपन का नाम आनंदीलाल था। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में है। इसके अतिरिक्त एक साहित्य विचारक के रूप में भी आपका स्थान विशिष्ट है। इनके जन्म के दो वर्ष पश्चात इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनकी माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामा ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। वहीं जैनेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा -दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्था में हुआ। उनका घर का नाम आनंदी लाल था। सन १९१२ में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूप से मैट्रीक परीक्षा में बैठने की तैयारी के लिए वह बिजनौर आ गए। १९१९ में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौर से न देकर पंजाब से उत्तीर्ण की। जैनेन्द्र की उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई। १९२१ में उन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से दिल्ली आ गए। कुछ समय के लिए ये लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में भी रहे, परंतु अंत में उसे भी छोड़ दिया।

सन् १९२१ से २३ के बीच जैनेन्द्र ने अपनी माता की सहायता से व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परंतु सन् २३ में वे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष

इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और किन्तु तीन माह के बाद छूट गए। दिल्ली लौटने पर इन्होंने व्यापार से अपने को अलग कर लिया। जीविका की खोज में ये कलकत्ते भी गए, परंतु वहाँ से भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरंभ किया। २४ दिसंबर १९८८ को उनका निधन हो गया।

10.3.2 रचनाएँ

उपन्यास: 'परख' (१९२९), 'सुनीता' (१९३५), 'त्यागपत्र' (१९३७), 'कल्याणी' (१९३९), 'विवर्त' (१९५३), 'सुखदा' (१९५३), 'व्यतीत' (१९५३) तथा 'जयवर्धन' (१९५६), 'मुक्तिबोध'।

कहानी संग्रह: 'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देश की राजकन्या' (१९३३), 'एक रात' (१९३४), 'दो चिड़ियाँ' (१९३५), 'पाजेब' (१९४२), 'जयसंधि' (१९४९) तथा 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (सात भाग)।

निबंध संग्रह: 'प्रस्तुत प्रश्न' (१९३६), 'जड़ की बात' (१९४५), 'पूर्वोदय' (१९५१), 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (१९५३), 'मंथन' (१९५३), 'सोच विचार' (१९५३), 'काम, प्रेम और परिवार' (१९५३), तथा 'ये और वे' (१९५४)।

अनूदित ग्रंथ: 'मंदालिनी' (नाटक-१९३५), 'प्रेम में भगवान' (कहानी संग्रह-१९३७), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक-१९५३)।

सह लेखन: 'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैन के साथ-१९३२)।

संपादित ग्रंथ: 'साहित्य चयन' (निबंध संग्रह-१९५१) तथा 'विचारवल्लरी' (निबंध संग्रह-१९५२)।

10.4 कृतित्व

जैनेन्द्र अपने पथ के अनूठे अन्वेषक थे। उन्होंने प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ के मार्ग को नहीं अपनाया, जो अपने समय का राजमार्ग था। लेकिन वे प्रेमचन्द के विलोम नहीं थे, जैसा कि बहुत से समीक्षक सिद्ध करते रहे हैं, वे प्रेमचन्द के पूरक थे। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ-साथ रखकर ही जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है। जैनेन्द्र का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी गद्य के निर्माण में था। भाषा के स्तर पर जैनेन्द्र द्वारा की गई तोड़-फोड़ ने हिन्दी को तराशने का अभूतपूर्व काम किया। जैनेन्द्र का गद्य न होता तो अज्ञेय का गद्य संभव न होता। हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का पहला पाठ जैनेन्द्र से ही सीखा। जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, एक नया तेवर दिया। आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है। जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के समावेश से दूरूहता आई है परंतु ये सारे तत्व जहाँ-जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित। उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्रायः इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं। इसी का एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती। पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रधानता रही है।

क्रांतिकारिता का तत्व भी जैनेन्द्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है। उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं। बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं। उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है। इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है। जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं। उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेन्द्र कर सके हैं। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुजरे हैं। नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की भावना इस संघर्ष का मूल आधार है। वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी-कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण-मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है। इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता की अपेक्षा के समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है।

साहित्य की प्रचलित धाराओं के बरअक्स अपनी एक जुदा राह बनाने वाले जैनेन्द्र को गांधी दर्शन के प्रवक्ता, लेखक के रूप में याद किया जाता है। हिन्दू रहस्यवाद, जैन दर्शन से प्रभावित जैनेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य सृजन प्रक्रिया की विलक्षणता और सुनियोजित संश्लिष्टता का अनन्यतम उदाहरण है। जैनेन्द्र के बारे में अज्ञेय ने कहा था आज के हिन्दी के आख्यानकारों और विशेषतय: कहानीकारों में सबसे अधिक टेक्निकल जैनेन्द्र हैं। टेक्नीक उनकी प्रत्येक कहानी की और सभी उपन्यासों की आधारशिला है। स्त्री विमर्श के प्रबल हिमायती जैनेन्द्र ने कहानी के अंदर प्रेम को संभव किया।

1905 में अलीगढ़ के कौडियागंज गांव में जन्मे आनंदी लाल ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वे आगे चलकर साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार बनेंगे। चार माह की उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया। मां और मामा भगवानदीन ने उन्हें पाला पोसा। बहरहाल बचपन अभावग्रस्त, संघर्षमय बीता और युवावस्था तक आते-आते नौकरी जिंदगी का अहम् मकसद बन गयी। दोस्त के बुलावे पर नौकरी के लिए कलकत्ता पहुँचे मगर वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी।

प्रत्येक रचनाकार का अपना निजी दृष्टिकोण होता है। अपने दृष्टिकोण से ही वह जीवन और जगत को देखता, समझता है तथा एक विचार-सरणी का निर्माण करता है। यह विचार-सरणी ही साहित्य-क्षेत्र में 'दर्शन' कहलाती है। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनके विचार प्रायः अस्पष्ट और दुरूह प्रतीत होते हैं। उनके विचारों में इस अस्पष्टता के कारण सुप्रसिद्ध आलोचक पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो जैनेन्द्र के दर्शन को 'दर्शन-हीन दर्शन' कहकर पुकारा था। वैसे जैनेन्द्र जी के विचारों पर गाँधी-दर्शन का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है। एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

‘‘उनके विचार-दर्शन में स्यादवाद की-सी एक निर्मम अस्पष्टता और दुरूहता रहती है। जैनेन्द्र विचारों से गाँधीवादी माने जाते हैं, परन्तु वह अकर्मण्य गाँधीवादी हैं। अपने कथा-साहित्य में अहिंसा, मानव-प्रेम, सर्वोदय आदि की भावना का अंकन करते हुए भी वह गाँधीवाद की उस चारित्रिक दृढता, उदारता और शक्ति के रहस्य को नहीं समझ पाए हैं जो गाँधी-दर्शन का मूलाधार है और व्यक्ति को अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक अनवरत संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इसी कारण जैनेन्द्र-साहित्य में हमें गाँधीवाद का वास्तविक रूप नहीं मिलता। उन्होंने गाँधी के रहस्यवाद को एक आकर्षक लबादे के रूप में ओढ़कर उसके नीचे अपनी स्वाभाविक अकर्मण्यता, व्यक्तिगत कुंठा और नियतिवाद को ढांकने का प्रयत्न किया है। इसी कारण जैनेन्द्र के प्रधान पात्र अकर्मण्य तथा अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से ग्रस्त,पलायनवादी और संघर्ष के सामने घुटने टेक देनेवाले रहे है।"

उनके चरित्रों में गाँधीवादी अहिंसात्मकता की प्रधानता होते हुए भी गाँधीवादी कर्मठता का अभाव है, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ0 राजेश्वर गुरू ने निम्नांकित उद्गार व्यक्त किए हैं-

‘‘जैनेन्द्र का कथा-साहित्य विद्रोह का साहित्य है। वह व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य को समाज की वेदी पर बलि होते देखकर क्षुब्ध हो उठता है। उनका विद्रोह तेजस्विता के साथ मुखर हो उठता है। उन्होंने समाज में गिरी हुई नारी की जैसी हिमायत की वैसी किसी क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। पर समाज को एकदम नकार कर उसको आमूल नया बनाने की कोशिश करने वाला समाज की साधारणता के साथ मेल न खा सकने के कारण समाज कसे दूर जा पड़ता है। यहीं उस व्यावहारिकता की आवश्यकता पड़ती है जो गाँधी जैसे क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। पर समाज को एकदम नकार कर उसको आमूल नया बनाने की कोशिश करने वाला समाज की साधारणता के साथ मेल न खा सकने के कारण समाज से दूर जा पड़ता है। यहीं उस व्यावहारिकता की आवश्यकता पड़ती है जो गाँधी जैसे क्रांतिदृष्टा से मिलती है। बाद में जैनेन्द ने गाँधीवाद को स्वीकार किया है, किन्तु गाँधीवाद का व्यावहारिक पक्ष जिस सामंजस्य को साधकर चलना चाहता है, वह जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में भी नहीं मिलता। तभी उनकी कथा-कृतियाँ एक बेचैनी-सी जगाकर रह जाती हैं। तभी लगता है कि उनकी कट्टो, उनकी सुनीता, उनकी मृणाल उनके विरूद्ध एक आरोप-पत्र, एक अभियोग-पत्र लिए जनता की अदालत में खड़ी हैं।"

जैनेन्द्र ने यद्यपि बेजबानों को सहनशीलता के माध्यम से वाणी तो प्रदान की है किन्तु उनके प्रति सहानुभूति-संवेदना जैसी कुछ, जितनी कुछ जागनी चाहिए, वह नहीं जग पाती।

विवेचन की दृष्टि से जैनेन्द्र-साहित्य में अभिव्यक्त विचार-दर्शन पर निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विचार किया जा सकता है-

(क) व्यक्तिवादिता की प्रधानता- जैनेन्द्र के साहित्य का स्वर व्यक्तिवाद-प्रधान है। वे व्यक्ति को समाज से पृथक् करके उसको व्यक्तिवादी रूप में देखते और चित्रित करते हैं। इसी कारण उनके कुछ पात्र तो घोर व्यक्तिवादी हो गये हैं। इस संदर्भ में जैनेन्द्र का अपना मत यह है कि ‘व्यक्ति के आंतरिक रूप के आधार पर ही उसको भली प्रकार और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।' उनकी इस विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

‘‘जैनेन्द्र की साहित्य-सृष्टि व्यक्तिमुखी है। उनका सम्बन्ध जीवन के व्यापक स्वरूपों से कम ही है। वे वैयक्तिक मनोभावों और स्थितियों के चित्रकार हैं। वे सामाजिक जीवन के वास्तविक प्रवाह से दूर जाकर आध्यात्मिक, सूक्ष्म-तत्वों को चित्रित करने का लक्ष्य रखते हैं। जैनेन्द्र सामाजिक जीवन से दूर जाकर जिस साहित्य की सृष्टि करते हैं, उसमें व्यक्ति के मानसिक संघर्ष और उसकी परिस्थितिजन्य समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं, परन्तु उनका निराकरण करने में लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट नहीं है।"

जैनेन्द्र के साहित्य में व्यक्तिवादिता का प्रबल आग्रह मिलने के संदर्भ में एक अन्य विद्वान आलोचक ने भी लिखा है-

‘‘व्यक्ति को समाज से अलग करके उसकी मानसिक कुंठाओं और ऊहापोहों का सूक्ष्म विश्लेषण करने में ही जैनेन्द्र की आस्था रही है। उनका व्यक्ति समाज के नैतिक बंधनों, मर्यादाओं और आदर्श के घेरे में छटपटाता दिखाई पड़ता है। वह इस घेरे को तोड़कर मनमानी करने का प्रयत्न करता है, परन्तु समाज का चक्र उसे कुचलकर रख देता है। ऐसा चित्रण कर जैनेन्द्र प्रकारान्तर से व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य की मांग उठाते हैं। उनके इस व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य का रूप पूर्णतः प्रतिक्रियावादी और समाज-निरपेक्ष है। यह व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य है उन अकर्मण्य पलायनवादी व्यक्तियों का व्यक्ति-स्वातंन्त्र्य है, जो समाज की नैतिक मान्यताओं के विरूद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न तो करते हैं, उन्हें भंग भी करते हैं, परन्तु समाज द्वारा कुचले जाकर अपने आत्म-पीड़न में ही सुख का अनुभव करते हुए यह सोचते रहते हैं कि वह समाज की रंचमात्र भी चिन्ता नहीं करते। ऐसे कुंठाग्रस्त अकर्मण्य व्यक्ति हमारे मध्य-वर्ग के ही प्राणी होते हैं। उनके विद्रोह को कुछ-कुछ आधुनिक हिप्पियों का सा विद्रोह माना जा सकता है।"

(ख) आत्म-पीड़न का अस्वस्थ रूप- जैनेन्द्र ने गाँधीवादी आत्म-पीड़न को अपनाया तो है किन्तु वह उसके स्वस्थ रूप के स्थान पर उसके विकृत रूप को ही अपनाते मिलते हैं। गाँधी जी ने आत्म-पीड़न को उन्हीं अवसरों पर प्रयुक्त किया था जब वे कोई अन्याय अथवा अत्याचार होते देखते थे। अनेक अवसरों पर उन्होंने इस शस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया और इसके द्वारा वे हिन्दू-मुस्लिम दंगों को बन्द कराने अथवा आंग्ल-सरकार को झुकाने में सफल भी हुए थे। अभिप्राय यह है कि गाँधी जी का आत्म-पीड़न मात्र आत्म-पीड़न के लिए नहीं होता था अपितु उसका उद्देश्य अन्याय या अत्याचार का प्रतिरोध करना होता था। इसके सर्वथा विपरीत जैनेन्द्र के पात्र आत्म-पीड़न को मात्र आत्म-पीड़न के लिए अपनाते मिलते हैं। उदाहरणार्थ उनके उपन्यास ‘त्यागपत्र’ की नायिका मृणाल को लिया जा सकता है जो अकारण ही गंदी बस्ती में घुल-घुल कर मर जाती है, किन्तु अपने भतीजे प्रमोद के साथ रहना स्वीकार नहीं करती। जैनेन्द्र के पात्रों की इस व्यक्तिवादिता, कुंठाग्रस्तता और आत्मपीड़न को उद्घाटित करते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

‘‘जैनेन्द्र के कुंठाग्रस्त और आत्म-पीड़न का मार्ग अपनाते हैं, परन्तु इस आत्म-पीड़न से उनका कोई कल्याण नहीं होता, उन्हें अपनी मानसिक समस्याओं से कुक्ति नहीं मिलती। इस आत्म-पीड़न में उन्हें ऐसे ही सुख का अनुभव होता रहता है, जैसा अनुभव खुजली के मरीज को खुजाते-खुजाते स्वयं को लहू-लुहान करने में मिलता है। इसका केवल इतना ही परिणाम निकलता है कि ऐसे पात्र पाठकों की करूणा, दया और सहानुभूति का थोड़ा- सा अंश प्राप्त

करने में सफल हो जाते हैं। जैनेन्द्र का यह एक अनोखा आदर्शवाद है। वस्तुतः यह एक ऐसे व्यक्ति का आदर्शवाद है जो स्वभाव से नियतिवादी, पलायनशील और अकर्मण्य है।"

(ग) काम-कुंठा का प्राधान्य- जैनेन्द्र के कथा-साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके अधिकांश पात्र काम-कुंठा से ग्रस्त हैं। इस तथ्य से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति की काम-भावना उसकी मूल-प्रवृत्तियों में से एक है, किन्तु वह स्वस्थ व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग ही मानी जा सकती है, उसका ध्येय नहीं स्वीकार की जा सकती। मानव की काम-भावना के नियमन के लिए ही समाज ने विवाह-प्रथा का आश्रय लिया है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उभारा है कि इच्छित जीवन-साथी न मिलने की दशा में अथवा व्यक्ति की रूचि-भिन्नता के कारण वह प्रायः अन्य नर-नारियों से नहीं मिल पाते, जिसके कारण उनके अन्तर्मन कुंठित हो उठते हैं और वे उनके जीवन-व्यवहार में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। इस स्थिति को स्वीकार करते हुए भी यह नहीं माना जा सकता कि ऐसे नर-नारियों को ही अपनी रचनाओं के नायक या नायिकाएँ बनाकर समाजिकों के समक्ष, समाज के इस विकृत रूप को ही प्रस्तुत किए जाए।

एक विद्वान आलोचक के शब्दों में-''जैनेन्द्र यद्यपि फ्रॉयड से पूर्ण-रूपेण प्रभावित नहीं है, फिर भी उनके पात्रों में हमें काम-कुंठा का ही प्राधान्य मिलता है। वह कहीं नग्नवाद का सहारा लेते हैं और कहीं अपने पात्रों की इसी कुंठा से ग्रस्त जीवन में भटकते हुए दीखते हैं, साथ ही वह नग्न अश्लीलता से ऊपर उठकर प्रेम के उदार रूप का निर्माण भी करते हैं। उन्होंने इस कुंठा पर दार्शनिकता का लबादा डालकर उसके रूप को परिवर्तित करने का प्रयत्न अवश्य किया है, लेकिन यह लबादा इतना झीना है कि काम-कुंठा का नग्न रूप उसके भीतर से झाँकता साफ दिखाई दे जाता है।"

इस संदर्भ में जैनेन्द्र के अपने विचार भी अवलोकनीय हैं- ''प्रेम ही कामुकता, आर्थिक स्वार्थ तथा हिंसक या महाकांक्षी पर विजय जा सकता है। नीति-नियम, आदेश, मर्यादा वैसा करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। असल में आस्तिक राक्षसी प्रेम और परस्परता के माध्यम से वैसी हो सकती है, शुद्ध मर्यादा से नहीं रह सकती। परस्परता ही नीति है, नैतिकता और शीलता है, परस्परता के विपरीत जो है, सब अनैतिकता और हिंसा है।"

(घ) वैयक्तिक कुंठाओं की प्रधानता- जैनेन्द्र के पात्रों में जहाँ काम-कुंठा की प्रधानता है, वहीं वे अन्य प्रकार की कुंठाओं से भी ग्रस्त मिलते हैं। इस सन्दर्भ में एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है कि 'जैनेन्द्र के आरम्भिक कथा-साहित्य में जो प्रधान पात्र आए हैं उनमें हमें वैयक्तिक कुंठाओं का प्राधान्य और प्राबल्य मिलता है। ये ऐसे कुंठाग्रस्त पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिक कुंठाओं की पूर्ति के लिए सामाजिक-नैतिक बंधनों का उल्लंघन करते हैं और इस अपराध के लिए समाज द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर उसके विरूद्ध सशक्त संघर्ष न कर भाग खड़े होते हैं और अपनी उन कुंठाओं को ही एकान्त में सहलाते रहते हैं। जैनेन्द्र ने अपने इन पात्रों का निर्माण स्वयं अपने स्वभाव और चरित्र के अनुसार किया है, ऐसा आभास मिलता है।"

जैनेन्द्र स्वभाव से भीरू, संघर्षो से पलायन करने वाले तथा अन्तर्मुखी व्यक्ति रहे हैं। भय से उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना प्रायः बन्द कर दिया था और बारह-तेरह वर्षो तक साहित्य-सृजन से भी मुख मोड़े, अकर्मण्यों का सा अज्ञात जीवन बिताते रहे थे। जिस समय उन्होंने दोबारा लिखना आरंभ किया था, उस समय उनकी मानसिक

स्थिति अशान्त और विक्षुब्ध थी। लेखन द्वारा उन्होंने अपनी इस मानसिक स्थिति से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया था। जैनेन्द्र की यह स्थिति निराशवादी और नियतिवादी वाली स्थिति थी। इसी कारण उनके द्वारा रचित पात्रों में भी हमें उनकी इस मानसिक स्थिति की प्रतिच्छाया मिलती है। अंतर्मुखी व्यक्ति मूलतः पलायनवादी होता है।

(ड़) नयी नैतिक मर्यादाओं की स्थापना- एक विद्वान आलोचक के शब्दों में- ''जैनेन्द्र ने प्रेम के क्षेत्र में नयी नैतिक मान्यताओं की स्थापना की है या यह कहिए कि वे प्रेम के क्षेत्र में नैतिक मर्यादाओं के विरोधी हैं। उनका मत है कि मर्यादा के बन्धन कामुकमता को बढ़ावा दिया करते हैं और उससे मन में कुंठा उत्पन्न होती है। अपनी इस धारणा के कारण ही वे प्रेम के क्षेत्र में नारी की पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक हैं। उनके प्रथम चार उपन्यासों में, उनकी नायिकाओं को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उससे यही ध्वनि निकलती है कि नारी प्रत्येक स्थिति में प्रेम करने के लिए स्वतंत्र है। विवाह-पूर्व नारी का प्रेम कभी-कभी उसके वैवाहिक जीवन में उमड़कर उसकी शंति भंग कर देता है। ऐसे अवसरों पर यदि नारी सतीत्व के नाम पर अपने उस प्रेम पर बंधन लगाती है तो क्या उसे सतीत्व के बराबर नहीं माना जा सकता? परन्तु जैनेन्द्र ने नारी की इस समस्या का उदार पति की दृष्टि से समाधान करने का प्रयत्न किया है। उनके तीन उपन्यासें में से 'सुनीता' की सुनीता, 'सुखदा' और 'विवर्त' की मोहिनी अपने उदार पतियों की सहमति और स्वीकृति पाकर अपने प्रेमियों के पास जाती है, परन्तु ये तीनों ही नारियाँ अन्ततः टूट जाती हैं। पति ही ऐसी अभिशप्त नारियों की परम गति बन जाते है।"

जैनेन्द्र ने अपने आरंभिक उपन्यासों में पतियों को जिस उदार रूप में प्रस्तुत किया है, उससे यह संकेत मिलता है कि जैनेन्द्र का अभिप्राय यह ध्वनित करना रहा है कि यदि आधुनिक वैवाहिक जीवन को सफल-सरल बनाना है, तो पतियों का अपनी पत्नियों के चारित्रिक स्खनल की ओर उदार दृष्टिकोण होना चाहिए। उनके इस दृष्टिकोण को असंगत बताते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही यह मत व्यक्त किया है-

''पत्नी के प्रति पति की इस उदारता में ही जैनेन्द्र का प्रेम सम्बंधी आदर्शवाद रूप पाता है। इस उदारता के रूप में जैनेन्द्र सम्यक् दाम्पत्य का संकेत देते हैं। जैनेन्द्र अपने इस संकेत को दार्शनिकता के ताने-बाने से बुनकर ऐसा आकर्षक सूत प्रदान करते हैं कि पाठकों को वह सहज स्वीकार्य हो सके। यह एक प्रकार से वर्तमान समाजिक-नैतिक व्यवस्था के प्रति एक अराजकतापूर्ण दृष्टिकोण है। जैनेन्द्र के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि इस उन्मुक्त स्वच्छन्द प्रेम के साथ उनकी सतीत्व की भावना भी लगी-लपटी चलती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल इसका उदाहरण है। मृणाल के लिए तन का कोई मूल्य या महत्व नहीं है। उसे वह दूसरों को ऐसे दे डालती है जैसे वह कुछ भी नहीं हो। फिर भी जैनेन्द्र उसे सती घोषित करते हुए उसे अत्यंत सूक्ष्म तंतु के सहारे पति के साथ जोड़े रहते है। सुनीता, सुखदा, कल्याणी, मोहिनी आदि सभी नारियाँ स्वच्छंद प्रेम की आकांक्षा रखते हुए भी पतियों के साथ जुड़ी रहती है। वस्तुतः सतीत्व की भावना वायवी है, यथार्थ नहीं। यह जैनेन्द्र के विचित्र, अव्यावहारिक आदर्शवाद की उपज है।"

(च) नारी-सम्बन्धी भाव-विचार- जैनेन्द्र के अधिकांश अपन्यासों में नारियों को ही प्रमुखता प्रदान की गई है और वे नारी प्रधान अथवा नायिका प्रधान हैं। उनके उपन्यासों के सुखदा, सुनीता, कल्याणी जैसे नामकरण भी इसी तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि उनमें नारी-पात्रों के चरित्रांकन को ही बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया होगा। अपने नायिका प्रधान उपन्यासों में जैनेन्द्र ने नारी-जीवन से सम्बन्धित प्रेम, विवाह, नारी-स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं को उभारा है और उनके

उपन्यासों का मूलस्वर नारियों को अधिक से अधिक अधिकार प्रदान करवाने का रहा है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा भी है-

‘‘पुरूष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है- अंग्रेजी की एक कहावत है। संशोधन यह भी किया जा सकता है- पुरूष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी इस कहावत में तथ्य कम नहीं रहता। बात वास्तव में यह है कि पुरूष कम बनाता-बिगाड़ता है, जो कुछ बनाती-बिगाड़ती-स्त्री ही। स्त्री ही सभी कार्यों को बनाती है, घर से कुटुम्ब बनाती है। जाति और देश को मैं कहता हूँ कि स्त्री ही बनाती है, फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी वही, हरा भी और उजाड़ भी, दूध भी और खून भी, रोटी भी और क्रीम भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी-सब कुछ स्त्री ही बनाती है। कर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फिर फैशन की जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्द में कहो, दुनियां स्त्री पर टिकी है। जो आँखों से देखते है, चुपचाप इस तथ्य को स्वीकार कर दुबके बैठे रहते हैं, ज्यादा चूँ नहीं करते। जिनकी आँखें नहीं, वे मानें या न मानें, हमारी बला से।"

डॉ0 रामरतन भटनागर ने जैनेन्द्र के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण को रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र से मिलता दिखते हुए लिखा है-

‘‘रवीन्द्र बाबू और शरच्चन्द्र नारी-जीवन की इस द्वैध स्थिति को स्वाभाविक मानकर चलते हैं और सिद्धान्त नहीं गढ़ते। जैनेन्द्र इसे नारी की अग्रगामिता मानकर चलते हैं और घर के प्रति उसके जाग्रत विद्रोह को विकास का चिन्ह मानते हैं। यह विद्रोह उनके उपन्यासों में क्रमशः आया है। ‘सुनीता’ में बुद्धुपन है, ‘सुखदा’ में विस्फोट है और ‘विवर्त’ में लालसा है। ‘व्यतीत’ में इसे सहज रूप में लिया गया है। पति अकल्पित रूप में उदार हैं, प्रारंभ से ही पत्नियोंके सहायक हैं कि किसी प्रकार प्रयत्न सार्थक बनें। इसी से घर के प्रति विद्रोह या नारी-स्वतंत्रता का नारा धीमा पड़ गया है। इस प्रकार जैनेन्द्र के उपन्यासों की नायिकाएँ आधुनिकाएँ है। वे गृह-प्राचीरों में बन्दी होना अस्वीकार करती हैं या अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट हैं। इसी बीच में नया या पुराना प्रेमी आ जाता है और घर की ऊब से बचकर चलने के लिए वह उसे डूबने का सहारा बना लेती है, परन्तु अन्त तक चलते रहना उनके लिए असंभव है। जहाँ रवि बाबू पति के बलिदान से नारी के प्रत्यागमन के लिए मार्ग खोलते हैं। वहाँ शरच्चन्द्र प्रेमी के बलिदान से दम्पति के पास आने की कल्पना करते हैं। प्रेमी मृत्यु द्वारा हटा लिया गया है, परन्तु उसकी पुण्य-स्मृति ने टूटे हुए दो हृदयों को जोड़ दिया है। जहाँ नारी स्वयं बलि की वेदी पर चढ़ गई है, वहाँ पति और प्रेमी उसकी पुण्य-स्मृति में बंधे हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में इस त्रिकोण की क्या स्थिति है? ‘सुनीता’ में प्रेमी पलायन कर जाता है, क्योंकि उनका प्रेम बाहरी तन का है और सुनीता जब निराश होकर यह सत्य प्रकट कर देती है, तो वह सत्य की इस चकाचौंध को सहन नहीं कर पाता और भाग जाता है। उदाराशय पति, पलायनशील प्रेमी जो कलाकार और क्रांतिकारी बनने की आत्म-प्रवंचना में ग्रस्त है और घर-बाहर, सतीत्व-नारीत्व, पति-प्रेमी के बीच में झूलती हुई पतिनिष्ठा। परन्तु नारी-स्वातन्त्र्य का दम भरकर प्रेम के स्वच्छन्द पथ पर चलने का साहस करने वाली नारी के टूटने की कहानी ही जैनेन्द्र के उपन्यासों में वर्णित है। वर्णित ही अधिक है, चित्रित कम है। कला की रंग-रेखाओं से नहीं, ज्ञान और टेकनीक की मुद्राओं से वह विभूषित है।"

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. जैनेन्द्र कुमार का जन्म.....वर्ष में हुआ है।
2. जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास.....में आते है।
3. जैनेन्द्र कुमार का निधन.....वर्ष में हुआ।
4. परख जैनेन्द्र का.....उपन्यास है।
5. वातयन जैनेन्द्र का.....है।

(2) हाँ/ नहीं में उत्तर दीजिए –

1. फाँसी जैनेन्द्र का कहानी संग्रह है ।
2. जैनेन्द्र की तुलना शरतचन्द्र से की गई है।
3. जैनेन्द्र हिंदी साहित्य में पहली बार मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले साहित्यकार हैं।
4. जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार है।
5. जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया गया है।

10.5 सारांश

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जैनेन्द्र के दार्शनिक विचारों में अस्पष्टता है, उसी प्रकार उनकी नारी-सम्बन्धी मान्यताएँ भी अस्पष्ट-सी हैं और उनके नारी-पात्र पाठकों के समक्ष एक पहेली-से प्रतीत होते हैं। यदि मृणाल को ही लिया जाए तो यह बात समझ में नहीं आती कि यह तथ्य उसके पतिव्रता होने का प्रमाण कैसे कहा जाएगा कि वह पति को अपने विवाह-पूर्व प्रेमी के बारे में बताए। चलो इस तथ्य को तो किन्ही अंशों तक उसके पतिव्रत्य का अंग माना भी जा सकता है, किन्तु पति की इस इच्छा का अंधानुकरण करना कि वह उसके साथ रहना पसन्द नहीं करता, मृणाल के पतिव्रत्य का प्रमाण कैसे माना जा सकता है? यदि पति से अलग रहते हुए वह अपने सतीत्व की रक्षा करती रहती तो भी एक बात थी, किन्तु न जाने किस तर्क के आधार पर वह कोयले वाले को अपना शरीर सौंपते हुए उसे भी पति जैसा अधिकार प्रदान कर देती है। यह जानते हुए भी कि यह कोयले वाला उसके रूप का लोभी है, वह उसके प्रति इस तथ्य के कारण बड़ी दयार्द्र है कि वह उसके लिए अपने बीवी-बच्चों को त्यागकर आया है। कहना न होगा कि यह जैनेन्द्र के परम्परा-विरोधी दृष्टिकोण का ही परिचायक है। कुल मिलाकर जैनेन्द्र का साहित्य हिंदी साहित्य में एक नए तरह की प्रवृत्ति लेकर आया है। इनका साहित्य पहली बार व्यक्ति स्वातंत्र्य (विशेषकर स्त्री) के प्रश्न पर इतने विस्तार से विचार करता है। गद्य साहित्य की कलात्मक अभिव्यंजना की दृष्टि से भी जैनेन्द्र का साहित्य उल्लेखनीय है।

10.6 शब्दावली

- मनोविश्लेषणात्मक - अवचेतन मन के रहस्यों का विश्लेषण करना।
- कुंठा - दमित इच्छाएँ

- पलायन - कर्म से भागने की प्रवृत्ति
- सतीत्व - पति/पत्नी के लिए अपने को नष्ट करने की भावना।

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. 2, जनवरी 1905

2. मनोविश्लेषणात्मक परंपरा
3. 1988
4. उपन्यास
5. कहानी-संग्रह

(2) 1. हाँ
2. हाँ
3. हाँ
4. नहीं
5. हाँ

10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं कृष्णदेव शर्मा, त्यागपत्रः एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

10.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, नामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. जैनेन्द्र-साहित्य में दृष्टव्य उनके विचार-दर्शन पर प्रकाश डालिए।
2. ''जैनेन्द्र विचारक और चिन्तक पहले हैं, साहित्यकार बाद में।"-इस कथन को जैनेन्द्र-साहित्य से उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. जैनेन्द्र-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए सिद्ध कीजिए कि जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनका दृष्टिकोण परम्परा-विरोधी रहा है।

4. ‘‘वैसे तो जैनेन्द्र के विचार-दर्शन पर गाँधीजी का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है।"-इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए।
5. पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, ‘जैनेन्द्र का दर्शन’ दर्शन-हीन है। आप उनके इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

इकाई 11 त्यागपत्रः पाठ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूलपाठ
11.4 व्याख्या
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया। उस इकाई में आपने जाना कि जैनेन्द्र कुमार का साहित्य एक नई तरह की प्रवृत्ति लेकर हिंदी साहित्य में आया। उस समय प्रेमचंद की सामाजिक समस्याओं को लेकर चलने वाला साहित्य प्रचलन में था। जैनेन्द्र जी ने उस परम्परा से भी व्यक्ति मन को, व्यक्ति स्वातंत्र्य को साहित्य के केन्द्र में खड़ा किया। इस इकाई में हम जैनेन्द्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास एवं कालजयी उपन्यास 'त्यागपत्र' के मूलपाठ का अध्ययन करेंगे। यह उपन्यास हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है। जैनेन्द्र जी की साहित्य साधना 'त्यागपत्र' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस इकाई में हम 'त्यागपत्र' के महत्वपूर्ण अंशों का पाठ करेंगे। उसके पश्चात् उन अंशों की व्याख्या करने का भी प्रयत्न करेंगे जिससे जैनेद्र के मूल साहित्य से आपका परिचय हो सके।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' के मुख्य अंश से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' की व्याख्या कर सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' में आये पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

11.3 मूलपाठ

(1)

...नहीं भाई, पाप पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई को नाप-जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जाने। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पार कर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी! उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरीं, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था ? याद किया होगा, यह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था। पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यन्त कुशल गृहणी थीं। जैसी कुशल थीं, वैसी कोमल भी होतीं तो? पर नहीं, उस 'तो'-? के मुँह में नहीं बढ़ना होगा। बढ़े कि गये। फिर तो सारी कहानी उस मुँह में निगलकर समा जाएगी और उसमें से निकलना भी नसीब न होगा। इतना ही हम समझें कि माँ जितनी कुशल थीं, उतनी कोमल नहीं थीं। बुआ पिताजी से काफी छोटी थीं। मुझसे कोई चार-पाँच वर्ष बड़ी होंगी। मेरी

माता के संरक्षण में मेरी ही भाँति बुआ भी रहती थीं। वह संरक्षण ढीला न था और आज भी मेरे मन में उस अनुशासन की कड़ाई के लाभालाभ पर विचार चला करता है।

पिताजी दो भाई और तीन बहनें। भाई पहले तो ओवरसियरी में युक्त प्रान्त के इन-उन जिलों में रहे। फिर एकाएक, उनकी इच्छा के अनुकूल उन्हें बर्मा भेज दिया गया। वह तबसे वहीं बस गये और धीमे-धीमे आना-जाना एक राह रस्म की बात रह गयी। इधर वह सिलसिला भी लगभग सूख चला था। दो बड़ी बहनें विवाहित होने के बाद प्रसव-संकट में चल बसीं थीं। अकेली यह छोटी बुआ रह गयी थीं। पिताजी उनको बड़ा स्नेह करते थे। उनकी सभी इच्छाएँ वह पूरी करते। पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन में सावधान थीं। मेरी माँ बुआ से प्रेम करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता; पर आर्य गृहणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं।

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गये और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

पास ही माँ खड़ी थीं। उनको देखकर जी हो आया कि मैं क्यों उनके गले नहीं लग जाऊँ और कहूँ, 'माँ! माँ!' उनकी ठोड़ी हाथ में लेकर कहूँ 'मेरी माँ! मेरी माँ!' इतने में बुआ ने मेरे हाथ में रेशम का रूमाल थमाया और एक झपट में वहाँ से चली गयीं। मैं सँभल भी न पाया था कि द्वार के आगे से मोटर जा चुकी थी।

(2)

चौथे रोज बुआ आ गयीं। ब्याह के वक्त मैंने अपने फूफा को देखा था। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं और उम्र ज्यादा मालूम होती थी। डील-डौल में खासे थे। मुझे यह पीछे मालूम हुआ कि उनका यह दूसरा विवाह था। हमारी बुआ फूल-सी थीं। जब वह ससुराल से आयीं, मेरे लिए कई तरह की चीजें लायी थीं। उन्होंने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा, ''प्रमोद, देखेगा, मैं तेरे लिए क्या-क्या लायी हूँ?''

अगले रोज एक कागज देकर मुझे शीला के यहाँ भेजा गया। मैं शीला को जानता था। उसके कोई बड़े भाई हैं, यह मैं नहीं जानता था। कागज उन्हीं के हाथों में देने को कहा गया था। शीला के बड़े भाई मुझे अच्छे लगे। मैंने जब यह कागज उन्हें दिया, तब उसे लेकर वह मेरी उपस्थिति को इतना भूल गये कि मुझे अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन फिर उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम किया, चूमा, गोद में लिया, कन्धे पर बिठाया और तरह-तरह की खानें की चजें दीं। शीला भी मुझको अच्छी लगीं। मेरा जी हुआ कि कोई बहाना हाथ लगे, तो मैं यहाँ रोज आया करूँ। शीला के भाई ने भी एक चिट्ठी लिखकर मेरी जेब में रख दी।

इसके बाद किसी विशेष बात होने की मुझे याद नहीं। अगले रोज फूफा आये। मेरा मन उनकी तरफ खुला नहीं। फूफा ने सफर की सब सुविधा का प्रबंध कर दिया। बुआ को तनिक कष्ट न होगा। यहाँ से जगह तीन सौ मील ही तो है।

मोटर में जाएँगे, न हुआ तो रास्ते में दो-एक जगह पड़ाव कर लेंगे। डाक-बंगले जगह-जगह हैं ही। पिताजी निश्चिंत रहे कि फूफा हमारी बुआ को जरा भी किसी तरह की तकलीफ न होने देंगे।

(3)

ब्याह के कोई आठ-दस महीने बाद की बात होगी। देखते क्या हैं कि बिना कुछ खबर दिये बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर चली आयी हैं। पिता इस बात से अप्रसन्न हुए। पर क्या वह प्रसन्न नहीं हुए? माँ ने कोई नाराजगी प्रकट नहीं की, बल्कि उन्होंने तो परोक्ष में फूफा को काफी सर्द-गर्म तक कह डाला।

मैंने पूछा, 'तुम सच बताओ, वहाँ जाना चाहती हो या नहीं?''

बुआ ने कहा, ''सच बताऊँ?''

बोलीं, ''अच्छा सच बताती हूँ। मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ। रखेगा?''

यह कहकर उन्होंने ऐसे देखा कि मैं झेंप गया और उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोदी में ले लिया। फिर एकाएक मुझे अपने से चिपटाकर बोलीं, ''एक बात बता। तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है?''

मैंने कहा, ''बेंत?''

बोलीं, ''सच-सच कहती हूँ, प्रमोद। किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ। बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता है। न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है।''

मैं आश्चर्य में रह गया। बोला, ''क्या कहती हो बुआ? वह मारते हैं।''

'हाँ मारते हैं।''

.....

''क्यों मारते हैं?''

'मैं खराब हूँ, इसलिए मारते हैं।''

(4)

एक दिन ऐसा हुआ कि मैंने माँ से पूछा, ''माँ, बुआ का कोई हाल आया है? अबकी छुट्टियों में मैं उनके पास जाऊँगा।'' सुनकर माँ फटी आँखों मुझे देखती रह गयीं, बोली नहीं।

बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी, वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया है। बुआ दुश्चरित्र हैं और फूफा को मालूम है कि वह सदा से ऐसी हैं। 'छोड़ दिया', इसका मतलब एकाएक समझ में नहीं आया। छोड़ कहाँ दिया है? क्या वह खुद चली गयी हैं, या किसी अलग स्थान पर उनको रख दिया है, या उसी घर में ही हैं और संबंध-विच्छेद हो गया है? पता चला कि उसी शहर में एक छोटे से घर में रख दिया है, कोठरी है।

इसके थोड़े दिनों बाद पिताजी का देहान्त हो गया। अब हम जरा संकुचित भाव से रहने लगे, क्योंकि माँ बहुत सोच-विचार वाली थीं। झूठी शान से बचती थीं और मेरे बारे में ऊँची आशाएँ रखती थीं। इस बीच मैं एफ.ए. कर ही चुका था। थर्ड ईयर में पढ़ता था। यूनिवर्सिटी जा रहा था कि उस नगर के स्टेशन का बोर्ड देखकर एकाएक मन में संकल्प सा उठने लगा। मैं बुआ को ढूंढ़ निकालूँगा और कहूँगा-''बुआ तुम! यह तुम्हारा क्या हाल है? चलो। यहाँ से चलो।''

यूनिवर्सिटी से छुट्टी होते ही घर पहुँचने के लिए माँ ने लिख भेजा था। बात यह है कि मेरे ब्याह की बातचीत के सूत को उठाकर इस बार माँ उसमें पक्की गाँठ दे देना चाहती थीं। लेकिन लौटते हुए रास्ते के उस स्टेशन पर उतरे बिना मुझसे नहीं रहा गया और मैंने बुआ को खोज निकाला।

(5)

शहर के उस मुहल्ले में जाते हुए मेरा मन दबा आता था। कहाँ बुआ, कहाँ यह जगह, यह जिन्दगी! वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे। भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बनिया बाहर एक दुकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था। मैं कोठरी के द्वार पर पहले तो ठिठका, फिर हिम्मत बाँध दरवाजा ठेलता हुआ अंदर चला गया।

मैं बुआ को देखता रह गया। मेरे भीतर जाने कैसी उथल-पुथल मची थी। मैं नहीं जानता था कि मैं क्या चाहता हूँ-इस सामने बैठी प्रगल्भ नारी को घृणा करना चाहता हूँ, या उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहता हूँ। वह नारी अति निर्मम स्नेहभाव से मुझे देखती रही, कहती रही-''लेकिन यह स्वप्न में भी न सोचा था कि खोजते हुए तुम्हीं मुझे पा लोगे। सोचा यह था कि जब चित्त न मानेगा, तब अपने प्रयत्नों से दूर से ही तुम्हें देखकर जी-भर लिया करूँगी। प्रमोद, तुम मुझे घृणा कर सकते हो। लेकिन फिर भी ता मैं तुम्हारी बुआ हूँ।''

मैं उस काल अत्यन्त अवश हो आया था। जी हुआ कि यहाँ से भाग सकूँ, तो भाग जाऊँ; लेकिन जकड़ बैठा रह गया। मन पर बहुत बोझ पड़ रहा था। न क्रोध में चिल्लाया जाता था, न स्नेह के आवेग में रोया जाता था।

''प्रमोद, मेरी अवस्था देखते हो। तुमसे छिपाऊँगी क्या? यह गर्भ इसी आदमी का है।''

इसके बाद बहुत देर तक कोई कुछ नीं बोला। चुप, सुन्न, मानों सब कुछ ठहर गया। मानों समय जमकर खड़ी शिला हो गया। नीरवता ऐसी हो आयी कि हमारे संसार ही हमें हाय-हाय शोर करते हुए जान पड़ने लगे। ऐसे कितना समय बीता। त्रास दुर्वह हो गया। तब उस बर्फीली चट्टान-सी जमी हुई चुप्पी को तोड़कर बुआ ने कहा-'प्रमोद, तुम सोये तो अवश्य नहीं हो, और मैं जाने क्या-क्या बकती रही! कहनी-अन-कहनी जाने क्या-क्या कह गयी। दुहनया में मेरे तुम एक हो जिससे दुराव मुझसे नहीं सखा जाएगा। अच्छा अब तुतम आराम करो। मैं जरा पड़ोस के पास के एक बालक को देख आऊँ।'

मैं पड़ा ही रहा, बोला नहीं; और बुआ चली गयीं।

(6)

मैं वहाँ सो नहीं सका। मेरा मन बहुत घबराने लगा। जो कहानी सुनी है, उसे कैसे लूँ? कैसे झेलूँ? मुझसे वह सँभाली नहीं जाती थी। इलाज यही था कि मैं उसके तले से बचकर चला जाऊँ। चला जाऊँ उसी अपनी दुनिया में जहाँ रास्ता बना बनाया है और खुद अवज्ञा का द्योतक है।

मैं खड़ा हो गया था। कोट बाँहों में डाल लिया था, हैट हाथ में था। इस भाँति चलने को उद्यत, मैं उनके साने खड़ा हुआ अपने को भयंकर असमंजस में अनुभव कर रहा था। झुककर उनके पैर छू लूँ! हाँ, जरूर छूने चाहिए, पर मुझसे कुछ बन नहीं पड़ रहा था। उस समय मैंने, मानों देर हो रही हो भाव से, कलाई में बँधी घड़ी को सामने करके देखा और जरा माथा झुकाकर कहा-''अच्छा बुआ प्रणाम।''

बुआ ने कहा, ''सुखी रहो भैया।'' लेकिन उस आर्शीवाद का स्नेह और कंपन कानों की राह प्राप्त करके मेरी गति और तीव्र हो गयी। मानों रुका नहीं कि जाने कौन मुझे पकड़ लेगा। तेज कदम बढ़ाता हुआ बाहर आया और सीधे स्टेशन की राह पकड़ ली। बाहर वह कोयले की दुकान दिखी, जहाँ वह व्यक्ति तराजू की डण्डी पर हाथ रखे हुए ग्राहकों को कोयला तोल रहा था। इस भय से कि वह मुझे देख न ले, झटपट नीचे आँख डालकर और तेज चाल से मैं बढ़ता चला गया, बढ़ता ही चला गया।

(7)

घर पर माँ ने पूछा, ''कहाँ गये थे? सतीश कहता था कि तुम एक रोज उससे पहले कालिज से चल दिये थे।''

मैंने कहा, ''बुआ को खोजता रह गया था। वे उस नगर में रहती हैं।''

जैसे किसी ने उन्हें डंक मारा हो, माँ ने कहा, ''कौन?''

''बुआ? मै उनसे मिलकर आया हूँ।''

माँ ने जोर देकर कहा-

''सुन प्रमोद, तेरी बुआ अब कोई नहीं है। मेरे सामने उसका नाम न लेना।''

''लेकिन सुनती हो अम्मा, मैंने कहा,'' ''मैं उनको भूल नहीं सकता हूँ।''

माँ ने कहा, ''तू जो चाहे कर, पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही। कुल- बोरन कहीं की!''

मन में एक गांठ सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसी ही जाती थी। जी होता था, कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़- ही- गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तर्क नहीं है,

संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा। पर क्या- आ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है?

मेरे विवाह - संबंध की फिर बात चल पड़ी थी। इस बार का रिश्ता माँ बहुत ही अच्छा समझती थीं। कुल, शील, संपदा, की दृष्टि से तो अच्छा था ही, लड़की भी सुंदर, सुशील और शिक्षिता थी। देर यह थी कि मैं एक बार उनके यहाँ पहुँचकर कन्या को देख लूँ और कन्या मुझे देख ले। मैं इसको दिनों से टालता आया था। मुझे जाने क्यों अपने बारे में बहुत संकोच होता था। अपने में मैं शंकित ही बना रहता था, किसी तरह की अपनी बड़ाई भीतर से उबकर आती न थी। प्रशंसक मेरे भी थे। लेकिन अपनी प्रशंसा का कारण मुझे अपने में नहीं मिलता था। इसके विपरीत, अपन में जो मुझे मिलता था, उससे मैं कुछ और निराश हो आया था।

लेकिन इस बार वहाँ जाना ही पड़ा, और संयोग की बात कि उन्हीं डॉक्टर साहब के घर पर बुआ से भेंट हुई।

देखता हूँ कि डॉक्टर के घर पर छोटे बच्चे- बच्चियों को पढ़ा रही हैं, वे और कोई नहीं बुआ ही हैं। उस समय तो मैं कुछ नहीं बोला और उन्होंने मुझे देखकर न देख सकने का सा भाव दिखाया, लेकिन उस कारण मैं वहाँ कुछ काल प्रकृतस्थ नहीं रह सका।

लड़की ने मुझे नापसंद नहीं किया। (जहाँ तक मैं यह बात मान सकता हूँ) मेरे उन्हें नापसंद करने का सवाल नहीं था। देखकर मैं उनके रूप, गुण की समीक्षा में जा ही सका, किन्नर लोक की परी क्या होती हैं! राजनन्दिनी (यही नाम था) को पहली निगाह देखकर मेरा निश्चय बन चुका था। मैं झेंपकर रह गया था, बोल कुछ भी नहीं सका था; लेकिन दुर्भाग्यवश उस समय मेरा वाक्चातुर्य मेरा साथ छोड़ जाने कहीं चला गया था। इस अकृतार्थता पर अपने से उस समय मैं रुष्ट भी हो आया हूँगा, ऐसा प्रतीत होता है। वह रोष हठात प्रकट भी हो गया था, क्योंकि मुझे ज्ञात हुआ कि समझा गया है कि लड़की मुझे पूरी तरह पसंद नहीं है। निश्चय है कि इस भ्रम को यथाशीघ्र पूर्ण सफलता के साथ मैंने छिन्न- भिन्न ही कर दिया था।

तब मेरा चित्त भीतर कहीं संदिग्ध था, पूरी तरह वह खिलकर नहीं आ रहा था। कभी भीतर इस बात पर मैं दब आता था कि सच्चाई मैं खोल नहीं रहा हूँ। वह दबाव इतना हो गया कि जब चलने का समय आया, तब मैंने डॉक्टर साहब से मानों चुनौती के साथ कहा कि मास्टरनी मेरी बुआ हैं।

पर विधि- लीला! स्थिति में तनाव आया और मेरे झुकने पर भी वह न सँभली। रिश्ता टूट गया। सास, राजनंदिनी की माता, दृढ़ता से उसके प्रतिकूल थीं और बिरादरी को भी उसमें आपत्ति थी। डॉक्टर साहब को उसके टूटने की बहुत ग्लानि थी। उनसे मेरे अन्त तक संबंध बने रहे। और वे मुझे पत्रों में सदा अपना पुत्र ही लिखते रहे। नन्दिनी के दूसरे विवाह पर उन्होंने बहुत असंतोष भी प्रकट किया और कदाचित् कुछ उसका दुष्परिणाम भी सुनने में आया था। यह पता अवश्य लगा कि बुआ वह जगह छोड़ गयी हैं। छोड़कर कहाँ गयी हैं? राम जाने। इस दुनिया में क्या जगह उनकी है कि जहाँ जाएँ? कोई ऐसी जगह नहीं है। इसलिए आज तो सब जगह उनकी अपनी है। सब एक समान है।

(8)

बहुत हो गया?। अब समाप्त करूँ। जिन्दगी कहानी है और बुआ की कहानी में भी अब सार नहीं बचा है।

घटनाएँ होती हैं, होकर चली जाती हैं। हम जीते हैं, और जीते- जीते एक रोज मर जाते हैं। जीना किस उछाह से आरंभ करते हैं, पर उस जीवन के किनारे आते- आते कैसे ऊब, कैसी उकताहट जी में भर जाती है। मैं इस लीला पर, प्रहेलिका पर सोचता रह जाता हूँ। कुछ पार नहीं मिलता,कुछ भेद नहीं पाता।

मेरी माँ का देहान्त हो चुका था। इसकी खबर उन्हें देर से लगी, पर लगाते ही उन्होंने पत्र मुझे लिखा था। उस पत्र को कितनी बार मैंने नहीं पढ़र है। पढ़ता हूँ और पढ़कर रह जाता हूँ। सोचता हूँ, पर नहीं, कुछ नहीं सोचता। वह सब जाने दो।

बात को क्यों बढ़ाऊँ। उसमें मेरी ही कापुरुषता बढ़ी हुई दीखेगी। सार यही कि मैं उनको नहीं ला सका। पथ्य आदि की भी कोई विशेष व्यवस्था कर सका, यह भी नहीं कह सकता। एक स्थानीय परिचित वकील मित्र को सौ - दो सौ जाने कितने रुपये दे आया था और कह आया था कि ध्यान रखना। उन्होंने ध्यान तो रखा ही होगा, पैसा भी खर्चा वाजिब ही वाजिब किया गया होगा, यह भी निश्चित है।

इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हलका तुल रहा हूँ। आज इस सारी वकालत के पैसे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठकर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक सरल सामान्य नहीं बना गया? इस सबका अब मैं क्या करूँ जब कि समय रहते प्रतिदिन के प्रेम से मैं चूक गया। यह सब मैल है जो मैंने बटोरा है। मैल कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढाँक रहा है। मैं यह नहीं चाहता हूँ....।

उस बात को सत्रह से कुछ ऊपर ही वर्ष हो गये हैं। आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय यह है कि किस अमानुषिकता के साथ सत्रह वर्ष मैं बुआ को बिना देखे काट गया? वह बुआ, जिन्होंने बिना लिये दिया। जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद मेरे भीतर अब अंगार सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही। उन्हीं बुआ को एक तरफ डालकर, किस भाँति अपनी प्रताणना करता रह गया।

आज दिन है कि खबर आती है कि वह मर गयीं। कैसे मर गयीं- जानने की कोई जरूरत नहीं है। जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है। उसी को पचा सकूँ, तो कुछ- का - कुछ हो जाऊँ।

बुआ तुम गयीं। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत् का आरंभ - समारंभ ही छोड़ दूंगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझसे सीखा जाए, आदतें पक गयी हैं; पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

पुनष्च- इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्याग- पत्र मैंने दाखिल कर दिया है।

11.4 व्याख्या

इस उपन्यास में सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति को जैनेन्द्र उद्घाटित करते हैं। प्रमोद और मृणाल के माध्यम से सामान्य मनुष्य की दुविधा को विवेचित करने में उपन्यासकार सफल रहा है। जब प्रमोद के विवाह की बात चलती है प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की अवस्था को याद करने लगता है। प्रमोद अपनी बुआ से ससुराल जाने के मौके पर कहता भी है- ''इसमें दुविधा की क्या बात है? वह जगह पसंद नहीं है तो वहाँ न जाएँ।'' बस- यह बात ऐसी सरल नहीं है। इस तथ्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है। पति-पत्नी की इच्छा-अनिच्छा को ही सब कुछ न समझने का कारण स्पष्ट करते हुए प्रमोद के माध्यम से जैनेन्द्र आगे कहते हैं कि अब मेरी समझ में यह तथ्य आ-गया है कि विवाह सूत्र में मात्र एक पुरुष और नारी ही परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में नहीं बंधा करते अपितु यह दाम्पत्य सूत्र समाज को जोड़ता भी जोड़ता है। उसके माध्यम से समाज के दो समुदाय भी परस्पर एक होते हैं। चूंकि विवाह मात्र दो नर-नारियों का ही समझौता या आपसी ग्रंथि बंधन नहीं है और उसके द्वारा समाज भी जुड़ता है। अतः विवाह बंधन में नर-नारियों की इच्छा-अनिच्छा के कारण ही इस संबंध को नहीं तोड़ जा सकता है। विवाह का संबंध भावुकता से न होकर सामाजिक व्यवस्था से है, अतः दाम्पत्य सूत्र में बंधे नर-नारी भावुकता के वशीभूत होकर इस सूत्र को विच्छिन्न नहीं कर सकते हैं। विवाह संबंध की ग्रंथि तो ऐसी ग्रंथि है जो एक बार लग जाये तो किसी भी परिस्थिति में खुल नहीं सकती। प्रमोद का मानना है, साथ ही साथ समाज का भी मानना है कि विवाह जैसे दैवीय गठबंधन को तोड़ना किसी भी स्थिति में लाभकारी नहीं हो सकता। इस जगत में घटित होने वाली सुख-दुःखमयी घटनाओं के संबंध में विचार करते हुए प्रमोद सोचता है कि इस विश्व में जो बहुत सी घटनाएं हो रहीं हैं, वे उसी रूप में क्यों घटती हैं- उनमें कुछ अंतर क्यों पड़ता? - अर्थात् क्या ये घटनाएं किसी दूसरे रूप में नहीं घट सकती थीं, उनका निश्चित रूप में घटना ही अनिवार्य था? इस प्रकार के प्रश्नों कोई उत्तर नहीं मिल पाता। वह आगे सोचता है कि चाहे इस प्रश्न मिले अथवा नहीं मिले, किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जो घटित होना होता है आगे हो जाता है। भवितव्य को घटित होते देखकर तो ऐसा आभास होता है कि भाग्य के देवता अथवा विधि द्वारा नर-नारियों के भाग्य के बारे में जो कुछ भी लिख दिया जाता है, उसका एक अक्षर भी इधर-उधर नहीं होता है अर्थात् विधि का लिखा हुआ अक्षरश: घटित होता ही है। न तो नियति बदलती है और न भाग्य का लिखा ही बदलता है। प्रमोद प्रश्न करता है कि इस जगत में वे बहुत सी ऐसी घटनाएं घटित होती हैं जो सर्वथा अनहोनी और कारण रहित प्रतीत होती हैं। उनके मूल में किसी प्रकार का तर्क, संगति या कारण नहीं होता- जैसे सदाचारी का दुःख झेलना, युवा और स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु हो जाना, किन्तु वृद्ध और रुग्ण व्यक्ति के चाहने पर भी उसकी मृत्यु न होना आदि। प्रमोद पुनः यह सोचता है कि क्या विधाता के इन पहेली जैसे अनबूझ कार्यों को समझने-जानने की इच्छा की जा सकती है अथवा नहीं अर्थात् क्या व्यक्ति को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है कि वह विधि के कारनामों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा सके?

विद्वानों की शिक्षाओं के सम्मुख प्रश्न चिन्ह लगाते हुए प्रमोद कहता है कि वे इस तथ्य पर बल दिया करते हैं कि इस जगत में परमकल्याणकारी ईश्वर की ऐसी लीलाएँ विद्यमान रहती हैं जो कल्याणकारी होनी चाहिए। प्रमोद कहता है कि ज्ञानियों के इस कथन को मैं विवश भाव से स्वीकार कर लेता हूँ- क्योंकि यदि इस सिद्धांत को स्वीकार को स्वीकार न करूँ तो फिर जिउगा कैसे? अर्थात जीवन इतने अधिक दुःख दर्दों से भरा हुआ है। उसमें इतनी अधिक अकल्याणकारी घटनाए घटती हैं कि यह विश्वास करके जीवित रहा जा सकता है कि कल्याणमय प्रभु अंततः भला ही

करेंगे। हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार- बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

अंतिम अध्याय में मृणाल अपने भतीजे को पत्र लिखती है कि अगर उसका (प्रमोद) का प्रेम अपनी बुआ के प्रति समाप्त हो जाएगा तो उसकी जीवन शक्ति समाप्त हो जायेगी। उसके मन में प्रमोद के परिवेश जो श्रद्धा है वह टिक नहीं पाएगी। ऐसी स्थिति में पाप उस पर (मृणाल) हावी हो जायेगा और उसकी जिन्दगी उस पाप की छाया में लीन हो जाएगी। प्रमोद का प्रेम खोकर मणाल के पास और कोई सहारा नहीं रहेगा। उस स्थिति में उसका जीवन उसके हाथ से निकल जाएगा। मृणाल अंत में लिखती है कि इस विषाक्त वातावरण में रहते हुए भी वह अपने मन को उस परिवेश से ऊपर उठा लेती है और उसके प्रेम- अवलंब को पाकर वह ऐसे वातावारण में भी फेफड़ों में शुद्ध हवा भर लेती है। उसे डर है कि जब वह उसको इस परिवेश में देखेगा तो वह उससे घृणा करने लगेगा और तब सहज भाव से उसके लिए जीना कठिन हो जाएगा। जबकि मृत्यु का भय है, लेकिन अगर मृत्यु श्रद्धा के साथ हो तो वह वह मृत्यु सार्थक है। श्रद्धा -विहीन तो जीवन भी निरर्थक है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. नायिका कथा लेखक की .....थी।
2. कथा लेखक पेशे से ..... है।
3. लेखक का नाम .....है।
4. 'भाई पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी' का वक्ता .....है।
5. बुआ.....स्त्री थी ।
6. कथा लेखक उपन्यास के अन्त में.....देता है।

11.5 सारांश

'त्यागपत्र' के मूल पाठ का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपने जाना कि -

- उपन्यास-कला की दृष्टि से 'त्यागपत्र' अपने जीवन-दर्शन के कारण हिन्दी साहित्य में नवीन कीर्तिमान स्थापित करने में समर्थ रहा है।

- 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र जी की उपन्यास-कला चरम उत्कर्ष पर परिलक्षित होती है। अपनी सहज-सरल भाषा के माध्यम से उन्होंने सांकेतिक शैली में जीवन-दर्शन को उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।
- 'त्यागपत्र' अपने कथ्य की नवीनता एवं प्रस्तुतीकरण में जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों में श्रेष्ठ है। इसमें शब्दों के अर्थगर्भत्व को बड़े ही सूक्ष्म ढ़ंग से रूपायित किया गया है।

11.6 शब्दावली

1.	भवितव्य	-	जो कुछ घटित होना हो।
2.	आर्तनाद	-	दुःख।
3.	नीरवता	-	चुप्पी
4.	त्रास	-	पीड़ा

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. बुआ

2. जज

3. प्रमोद

4. कथा लेखक

5. पतिपरित्यक्ता

6. त्यागपत्र

11.8 संदर्भ ग्रंथ

1. त्यागपत्रः जैनेन्द्र कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

11.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, रामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गये और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

1. उक्त गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या करें।

हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार- बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

2. उपरोक्त गद्यांश के उद्देश्य को उद्घाटित करें।
3. उक्त गद्यांश का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें।

इकाई 12- त्यागपत्र: संरचना व शिल्प

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 त्यागपत्र : आलोचनात्मक संदर्भ
12.4 सारांश
12.5 शब्दावली
12.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

‘‘जैनेन्द्र कृत त्यागपत्र हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की कोटि में एक प्रकाश-स्तंभ है। सन् 1937 में प्रकाशित हुए इस उपन्यास ने उस काल में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त मुंशी प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों के प्रवाह को नूतन मोड़ दिया था। जैनेन्द्र की उपन्यास-कला का श्रीगणेश यद्यपि प्रेमचन्द-काल के ही उत्तरवर्ती भाग में हुआ था, तथापि उपन्यास-क्षेत्र में जैनेन्द्र ने एक नवीन औपन्यासिक कला के साथ पदार्पण किया।" जैनेन्द्र के उपन्यास एक

विशेष थीम को लेकर चलते हैं। यह थीम विवाहेत्तर संबंध, वैवाहिक समस्याएँ एवं स्त्री स्वातंत्र्य के संदर्भ से विकसित हुई है। जैनेन्द्र से ही मानव मन की गहराईयों में जाकर विश्लेषण करने की पद्धति हिंदी साहित्य में शुरू हुई। इस तरह से आप साहित्य में मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले पहले कथाकार हैं। इस इकाई में 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा उपन्यास के तत्वों के आधार पर करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- उपन्यास के संरचना विधान का अध्ययन करेंगे।
- 'त्यागपत्र' के औपन्यासिक शिल्प का विवेचन कर सकेंगे।
- उपन्यास के मूल तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' उपन्यास पर विविध विद्वानों के वक्तत्वों से परिचित हो सकेंगे।

12.3 त्यागपत्र : आलोनात्मक संदर्भ

मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों का वर्ण्य-विषय समाज में परिव्याप्त नाना प्रकार की समस्याएँ रही हैं, जबकि जैनेन्द्र ने समाज के स्थान पर व्यक्ति को या कहिए समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को महत्व प्रदान किया। इस व्यष्टि या व्यक्ति में से भी जैनेन्द्र का झुकाव नारियों की ओर ज्यादा रहा है और उनके प्रायः सभी उपन्यास नारी-प्रधान ही हैं। इन नारियों को भी उन्होंने जटिल पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है, उनके जीवन में ऐसे उतार-चढ़ाव चित्रित किए हैं कि इन नारियों के चरित्र एक अबूझ पहेली जैसे बन गए हैं। सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र की उपन्यास-कला पर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने पतित नारियों का महिमान्वित अंकन करके एक प्रकार से सामाजिक रीति-नीति और परम्पराओं-मर्यादाओं के विरूद्ध कार्य किया है। हिन्दी साहित्य में यही आक्षेप जैनेन्द्र के प्रति किया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने त्यागपत्र में मृणाल का चरित्रांकन जिस रूप में किया है वह अविश्वसनीय तो है ही, मृणाल का आचरण भी अनेक अवसरों पर अबूझ पहेली-सा प्रतीत होता है। यह सत्य है कि फ्रायडवाद की मान्याताओं के कारण नर-नारियों के आचरण प्रच्छन्न-प्रकट काम-भावना से अनुप्रेरित रहते हैं, किन्तु मृणाल के चरित्र की व्याख्या फ्रायडीय मान्यताओं के परिपार्श्व में भी भली प्रकार नहीं हो पाती है। आगे हम औपन्यासिक कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता पर विचार करेंगे।

विद्वानों ने उपन्यास के छह तत्व स्वीकार किए हैं- कथावस्तु, पात्र और उनका चरित्र-चित्रण, देशकाल और वातावरण-योजना, कथोपकथन, भाषा-शैली और उद्देश्य अथवा संदेश। आगे हम एक-एक करके इन तत्त्वों की कसौटी पर त्यागपत्र की सफलता-असफलता की परख करेंगे।

कथावस्तु- त्यागपत्र की कथावस्तु संक्षिप्त ही है और उसका विकास पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) शैली के माध्यम से किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रमोद या जज एम0 दयाल अपने पद से इस्तीफा देते हुए उन कारणों का पुनरावलोकन

करता है जिसके कारण उसे अपनी बुआ के नारकीय जीवन पर पश्चाताप होता है और वह तदर्थ स्वयं को भी अपराधी-सा मानते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। वह याद करता है कि उसकी बुआ मृणाल के माता-पिता का उसके बाल्यकाल में ही निधन हो गया था और उसका भरण-पोषण प्रमोद के माता-पिता की देख-रेख में हुआ था। यद्यपि प्रमोद और मृणाल की आयु में काफी अंतर था, किन्तु शनैः शनैः मृणाल प्रमोद से ऐसी बातें और कुछ शारीरिक क्रियाएँ करने लगी थी, जिसके मूल में निश्चय ही कामासक्ति का हाथ स्वीकार किया जा सकता है। इसी क्रम में मृणाल अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकर्षित हो उठी थी और किसी-न-किसी बहाने से शीला के घर जाती रहती थी। शीघ्र ही उसके इस आकर्षण का रहस्योद्घाटन हो गया तो उसको प्रमोद की माता ने बेंतों से खूब पीटा था और उसकी पढ़ाई स्थगित करवा दी थी। तदनन्तर उसका शीघ्र ही विवाह कर देने की चेष्टा की गई और इस क्रम में उसका विवाह अधेड़ उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया गया। मृणाल ने अपने पति को किसी सच्ची पतिव्रता स्त्री की तरह यह बात बता दी कि उसका शीला के भाई के प्रति अनुराग था, जिसे सुनकर उसके पति ने उसका परित्याग कर दिया। मायके में माता-पिता न होने तथा भाई-भावज द्वारा दुत्कारे जाने की आशंका से मृणाल लौटकर अपने मायके नहीं आई और एक कोयला बेचने वाले व्यक्ति के आश्रय में रहने लगी। वह कोयले वाला उसके रूप पर आसक्त था और विवाहित व्यक्ति था, अतः वह गर्भवती मृणाल को शीघ्र ही उसके हाल पर छोड़ गया। मृणाल ने कुछ दिनों तक एक डॉक्टर के बच्चों को पढ़ाकर भी जीविकार्जन किया किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उस डॉक्टर की लड़की से प्रमोद का विवाह होने वाला है, तो इस विवाह-सम्बन्ध पर अपनी अमंगलकारी छाया न पड़ने देने के विचार से वहाँ से भी चली गई। प्रमोद ने उससे मिलकर यह आग्रह किया था कि वह घर लौट चले किन्तु प्रमोद के इस आग्रह को वह स्वीकार न कर सकी। इसके अनन्तर उसके जीवन में जो उतार-चढ़ाव आए, उनका अंतिम परिणाम यह निकलता दिखाया गया है कि वह चोरों, जेबकतरों और वेश्याओं की गंदी बस्ती में रहने लगती है। प्रमोद उससे वहाँ जाकर भी मिलता है, किन्तु उस स्थान को वह (मृणाल) सच्ची मनुष्यता का सूचक बताकर जहाँ व्यक्ति बाहर-भीतर से एक जैसा होता है, नहीं छोड़ती। वह प्रमोद से यह आग्रह अवश्य करती है कि यदि वह उसको धन देना चाहता है, तो इतनी अधिक मात्रा में धन दे कि वह उन समस्त पतित नारियों का उद्धार कर सके। इसके पश्चात मृणाल की मृत्यु हो जाने तथा प्रमोद द्वारा अपने जज के पद से त्यागपत्र देने की घटना के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

उपन्यास का कथानक संक्षिप्त, प्रवाहमय, रोचक और विश्वसनीय होना चाहिए। कहना न होगा कि आलोच्य उपन्यास का कथानक संक्षिप्त है और उसमें रोचकता तथा प्रवाह का भी अभाव नहीं है, हाँ जहाँ तक विश्वसनीयता का संबंध है, उपन्यास की अनेक घटनाएँ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है। इन घटनाओं में से भी विशेषतः मृणाल के आचरण से सम्बन्धित प्रसंग पाठकों की सहानुभूति नहीं अर्जित कर पाते है, क्योंकि उन्हें उसका आचरण अटपटा-सा प्रतीत होता है। जैसा कि कहा जा चुका है आलोच्य उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैश बैक टेकनीक) का सफलतापूर्वक आश्रय लिया गया है और कथा का विकास प्रमोद द्वारा अपने जीवन की घटनाओं के पुनरावलोकन के माध्यम से कराया गया है। चूँकि प्रमोद और मृणाल का बाल्यकाल परस्पर सम्बन्धित रहा था तथा बाद में वह जब-तब मृणाल से मिलता रहता था, अतः मृणाल के जीवन पर भी इन मुलाकातों में ज्ञात हुई बातों के द्वारा प्रकाश डाला गया है।

पात्र-योजना एवं चरित्रांकन-कला- पात्र योजना एवं पात्रों की चरित्रांकन-कला की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इसमें मात्र दो ही मुख्य पात्र हैं-मृणाल और प्रमोद। अन्य पात्रों में मृणाल की सहेली शीला, शीला का भाई, मृणाल का दुहाजू पति तथा कोयले वाला उल्लेखनीय हैं, किन्तु इन गौण-पात्रों की योजना मुख्यतः कथानक को गति प्रदान करने की दृष्टि से ही की गई है। उपन्यासकार ने उनका चित्रांकन करने की ओर रूचि प्रदर्शित नहीं की है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में सामान्यतः पात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिए, क्योंकि तभी उपन्यासकार उनका चरित्र-चित्रण करने का अधिक अवसर प्राप्त कर पाता है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र ने त्यागपत्र में मात्र दो ही पात्रों को प्रमुखता देकर उचित ही कदम उठाया है। इन दोनों पात्रों में से भी उपन्यासकार ने प्रमोद का विस्तृत चित्रांकन नहीं किया है- वह भी मूलतः मृणाल के चरित्र के विभिन्न पक्षों के उद्घाटन का माध्यम मात्र है। अतः कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास नायिका प्रधान है और उसमें मात्र एक ही प्रधान पात्र के चरित्रांकन का प्रयास किया गया है। हाँ मृणाल का चरित्रांकन उपन्यासकार ने इस रूप में किया है कि सहज रूप में पाठकों के गले नहीं उतर पाता है। उदाहरण के लिए सामान्य नारी कदाचित् यह कदम नहीं उठाती कि वह अपने पति को अपने विगत काल के प्रेम-सम्बन्ध के बारे में बताए। उसके इस आचरण को तो उसके भोलेपन और सत्य-प्रेम का प्रतीक स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु मृणाल द्वारा कोयले वाले के साथ रहना और यह जानते हुए भी कि यह व्यक्ति मुझको छोड़कर चला जाएगा, उसको सर्वस्व समर्पित कर देना, समुचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार उसका वेश्याओं, चोरों, जेबकतरों आदि की बस्ती में रहना और इस तथ्य पर बन देना कि सच्ची मनुष्यता यहाँ ही है-यहाँ सभ्य जगत् जैसा मिथ्याडंबर नहीं है-आत्यंतिक रूप में ठीक होते हुए भी कोई अनुकरणीय प्रेरणा प्रदान नहीं कर पाता। स्वर्गीय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का यह मत उचित ही है-''जैनेन्द्र की मृणाल पहेली बन गई है, क्योंकि उन्होंने उसके अंतर्गत के भाव-सौंदर्य को परिस्फुट नहीं किया। प्रेम की वह क्या गरिमा थी, जिससे उसने कलंक, निन्दा और दुःख-तीनों को चुपचाप सहन कर लिया है।"

देशकाल और वातावरण-योजना- उपन्यास में वर्णित तथ्यों के अनुरूप देशकाल और वातावरण की योजना करने के फलस्वरूप उसकी वर्ण्यवस्तु की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि हुआ करती है। आलोच्य उपन्यास क्योंकि मनोविश्लेषणात्मक श्रेणी का उपन्यास है अतः इसके अंतर्गत उपन्यासकार ने बाह्य वातावरण की अपेक्षा आन्तरिक वातावरण की नियोजना पर अधिक बल दिया है। डा0 सुरेशचन्द्र निर्मल ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है- ''आंतरिक वातावरण आज के देशकाल के अनुसार या युगानुरूप है। आज व्यक्तिवादी समाज है, आज समाज की इकाई का महत्व ही सर्वोपरि है। अतः व्यक्ति की अपनी विचार-परिधि की आज के संदर्भ में इतनी विवृत्त श्रृंखला है कि नाना विकार अनजाने ही झाँक उठते हैं। सुविचारक उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास के आंतरिक वातावरण (मनोद्वन्द्व) को प्रस्तुत करते हुए उसे तर्क की कसौटी पर कसा है, दर्शन का पुट दिया है-

''मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो तो वह उलझती और कसती हो जाती थी जो कुछ होता था, जो कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुड गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़-ही-गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊंटपटांग है। इसमें तर्क नहीं, संगति नहीं, कुछ नहीं है।"

‘‘सैक्स, प्रेम और साहचर्य आधुनिक वातावरण में खूब पनप रहा है। स्वातंन्त्योत्तर काल के उपन्यासकारों ने इसका स्पर्श न किया होता, भला कैसे? जैनेन्द्र जी ने इसकी बड़ी अनूठी व्याख्या की है कि नर-नारी द्वैत कैसे निर्मित हुआ? वे कहते हैं कि समग्र में अंह चेतनाओं के पृथक् होते ही उनमें पर के सान्निध्य की चाह उत्पन्न हुई। इस चाह के दो रूप हो गये। एक ने चाहा, ‘वह मुझमें हो।' वह अहं स्त्रीत्व प्रधान हो गया है। दूसरे ने चाहा, ‘मैं उसमें हूँ।' यह अहं पुरूष-युक्त हुआ। इस प्रकार एक ही अंह के दो रूप या उर्द्धनारीश्वर की पौराणिक कल्पना लेकर वे चले हैं। परम्परावादी पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर उलकी लेखनी ने गति प्रवाहित की है। यथा, प्रमोद अपनी बुआ में अनुरक्त है और वह बुआ भी प्रच्छत्र वासनाओं से ढकी है। समाज में जाने कितने प्रमोद और मृणाल इस अनुक्त पिपासा के शिकार हो जाते हैं। यही जैनेन्द्र का मनोविश्लेषण बाह्मजगत् की ओर झाँकने की चेष्टा कर रहा है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि देशकाल और वातावरण-योजना की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सफल है।

कथोपकथन या संवाद-योजना- नाटकीय शिल्प-विधान में तो कथोपकथन नाट्य-रचना के प्राण-तत्त्व होते ही हैं, उपन्यास-कला में भी उनका कम महत्व नहीं होता। कारण यह है कि कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों का चारित्रिक उद्घाटन, कथा का विकास, कथानक की विलुप्त कड़ियों को जोड़ना आदि अनेक प्रयोजनों की सिद्धि करता है। इन कथोपकथनों की प्रथम विशेषता यह स्वीकार की जाती है कि वे सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले कथनों की तरह संक्षिप्त होने चाहिएँ। आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में यह गुण विद्यमान है, जैसे-

मैंने कहा- ‘‘मैं वहाँ गया था-

धीमे से बोलीं- ‘‘मैं जानती थी, तुम जाओगे।"

‘‘अस्पताल में भी गया था-तुमने मुझे नहीं लिखा?"

‘‘क्या लिखती?"

‘‘अच्छा मुन्नी कहाँ है?"

‘‘मर गई।"

‘‘मर गई ! कब मर गई?"

‘‘दस महीने की होकर मर गई। रोग से मरी, कुछ भूख से मरी।"

‘‘मिशनवाले उसे माँगते थे। दे क्यों नहीं दिया?"

वे चुप रहीं। अनन्तर मैं ही बोला-

‘‘यहाँ कैसे आयीं?"

‘‘भटकते-भटकते ही आई।"

उपर्युक्त कथोपकथन की योजना मृणाल और प्रमोद के मध्य नियोजित की गई है। कहना न होगा कि दोनों के ही प्रश्न और उत्तर बड़े संक्षिप्त हैं।

कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार कथानक के छूटे हुए या विलुप्त अंशों की सूचना पाठकों को दे दिया करते हैं। इस दृष्टि से उपर्युक्त कथोपकथन को ही उदाहरण-स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने पाठक-वर्ग को इस तथ्य की सूचना दे दी है कि मृणाल को एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो मर चुकी है। इस कथोपकथन से इस तथ्य का भी पता चलता है कि प्रमोद अपनी बुआ को खोजते-खोजते वहाँ के अस्पताल में भी गया था।

कथोपकथनों का स्वाभाविक तथा वक्ता पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप होना भी आवश्यक स्वीकार किया जाता है, जिनका आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में पूर्णतः निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण अवलोकनीय है-

‘‘तुम बड़े अच्छे लड़के हो। कौन-सी क्लास में पढ़ते हो?"

‘‘सेविन्थ क्लास।"

‘‘सेविन्थ क्लास?" खूब! प्रमोद, जाकर कहना मैं अभी एक महीना यहीं हूँ। समझे?"

मैं खूब समझ गया था।

‘‘क्या समझे?"

‘‘-मैं एक महीना यहीं हूँ।"

शीला के भाई इस पर खूब हँसे।

‘‘तुम नहीं भाई-मैं, मैं, मैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन पूर्णतः स्वाभाविक है। बच्चे से जैसा कहा जाता है, वह उसको प्रायः उसी प्रकार दुहरा दिए करता है, चाहे ऐसा करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता हो। यही कारण है कि शीला का भाई प्रमोद को समझाने का प्रयास करता है कि वह एक महीने तक यहीं रूकेगा, किन्तु प्रमोद से इस बारे में पूछे जाने पर वह जो उत्तर देता है उसका अर्थ यह निकलता है कि प्रमोद एक महीने तक यहीं रूकेगा। पात्रों की मनःस्थिति की अनुकूलता की दृष्टि से निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है-

थोड़ी देर के बाद कहतीं, ‘‘तुझे पतंग अच्छी लगती है?"

मैं कहता- ‘‘हाँ।"

‘‘तू पतंग उड़ाएगा?"

मैं कहता- ‘‘बाबूजी मना करते हैं।"

इस पर वह एकाएक मुझे अंक में भरकर उत्साह के साथ कहतीं- ‘‘हम तुम दोनों संग-संग पतंग उड़ाएँगे कि खूब दूर ! सबसे ऊँची ! उड़ाएगा?"

मैं कहता, ‘‘पैसे दो, मैं लाऊँ।"

वह थेड़ी देर मुझे देखती, वह दृष्टि अनबूझ होती थी, मानों मैं उन्हें दीख ही न रहा होऊँ। मुझसे आर-पार होकर जाने वह क्या देख रही हैं! एकाएक शिथिल पड़कर कुछ लजाकर कहती-

‘‘चल रे पतंग से बालक गिर जाते हैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन में विशेषतः मृणाल द्वारा कहे गये उद्गार उसकी मनोभावना के पूर्णतःअनुकूल हैं। वह प्रमोद के प्रति आकर्षित है और असके साथ-साथ पतंग उड़ाने की कामना के मूल में उसका यह आकर्षण ही क्रियाशील है। हाँ, अंततः वह अपने विचार पर स्वयं ही संकुचित हो उठती है और इसीलिए लजाकर पतंग उड़ाने से इंकार कर देती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास में कथोपकथनों की योजना सफल रीति से की गई है।

भाषा शैली- भाषा-शैली की दृष्टि से त्यागपत्र में जैनेन्द्र ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति ही कहीं अतीव सरल तथा कहीं अत्यधिक सांकेतिक और गूढ़ भाषा-शैली का प्रयोग किया है। शब्दावली की दृष्टि से उन्होंने भावभिव्यक्ति में सहायक तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी- सभी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियों में एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है कि उसे पढ़कर तुरंत इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह जैनेन्द्र की रचना है। उन्होंने देशज शब्दावली का भी पर्याप्त मात्रा में सार्थक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं-

(क) तू अब उसे कभी याद मत करियो।

(ख) हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था।

(ग) वहाँ अपनी गिरस्ती अच्छी तरह संभालना।

(घ) गुड़ीमुड़ी करके मेरी ओर फेंक दिया।

(ड़) नाहक किसी को क्यों तकलीफ दोगी?

विदेशी शब्दों में उन्होंने माई डियर, पोजीशन आदि शब्दों का तो प्रयोग किया ही है, कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अंगेजी के वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है।

त्यागपत्र मनोविश्लेषणत्मक उपन्यास है, अतः उसमें इस श्रेणी के उपन्यासों की तरह पात्रों के मनोभावों के सूचक उद्गारों एवं स्वगत-कथनों की बहुलता है-

बुआ ने कहा- बता, मैं आज तेरी क्या हूँ? कभी यह सच था कि मैं तेरी बुआ थी, पर उस बात को मैंने अपने हाथों से तोड़-ताड़कर धूल मे पटक दिया है। धूल में से उठाकर उसी के निर्जीव छूछे पिंजर को तू हठपूर्वक सामने लाकर सत्य कहना चाहता है, यही झूठ है। मैं कहती हूँ, प्रमोद, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़। जा, जा, अब यहाँ मत ठहर। देर तक यहाँ रहेगा, तो ठीक न होगा।"

(क) फिर उसी बेबस भाव से मुझे देखते रहकर मानो यंत्र की भाँति उस खत को फाड़कर नन्हें-नन्हें टुकड़ों में भर दिया। (उत्प्रेक्षा)

(ख) शीला ऐसी हो गयी, जैसे ऊद-बिलाव के आगे मूसी। (उपमा)

(ग) मैं यों तो काफी बड़ा हो चला था, निरा बच्चा अब नहीं था, तो भी मैं उस समय बुआ के अंक में चुपचाप बालक-सा पड़ा रहता था। (उपमा)

(घ) गर्म तवे पर जैसे जल की बूंदें चटक कर छिटक रही हैं वैसे ही मेरी ओर से कोई ठंडा बोध तब विस्फोट ही पैदा करता। (दृष्टांत)

उनकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ‘‘जैनेन्द्र जी की भाषा-शैली आत्मीयता एवं विश्वसनीयता के विशेष तत्त्वों से समन्वित है। भावों का समाहार, संक्षिप्तता और अपनत्व की प्रभविष्णुता वहाँ विशेष रूप से विद्यमान है। भाषा दार्शनिकता के कारण सजीव होते हुए भी लाक्षणिक व्यंजना से कुछ बोझिल अवश्य है। अतः सामान्य पाठक के लिए लाक्षणिक व्यंजना एक गोरखधंधा भी बन जाती है, किन्तु प्रबुद्ध पाठक के लिए, थोड़ा-सा बौद्धिक झुकाव रखने वाले पाठक के लिए वह दुर्भेद्य तो नहीं ही कही जा सकती।‘‘

संक्षेप में जैनेन्द्र की भाषा-शैली सरल-सजीव होते हुए भी यत्र-तत्र दुरूहता लिए हुए है।

त्यागपत्र जैनेन्द्र के उत्कृष्ट मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में से एक है। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने मृणाल के माध्यम से एक नारी के अंतर्मन की ग्रन्थियों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। मृणाल द्वारा पतिव्रत धर्म की जो मनमानी परिभाषा स्वीकार की जाती है, जिसके अनुसार वह सामाजिक नियमों की अपेक्षा अपने विवेक को अधिक महत्व प्रदान करती है, यही तथ्य उसके जीवन के विकास का निमित्त बन जाता है। इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता इसका कथानक-शिल्प है। जैनेन्द्र ने इसमें कुछ अभिनव प्रयोग भी किए हैं, जो इस प्रकार हैं-

पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग- त्यागपत्र के उपन्यासकार जैनेन्द्र द्वारा कथा-शिल्प की नूतन विधा का आश्रय लिया गया है और वह है पूर्वदीप्ति प्रणाली। इसमें घटनाओं का वर्णन उस रूप में नहीं किया गया है जिस प्रकार परम्परागत उपन्यासों में घटनाओं का विकास हुआ करता है। कथानक का आरंभ उपन्यास की नायिका की मृत्यु की घटना के साथ किया गया है जो सामान्य कथा-शिल्प के उपन्यासों के अन्तर्गत नहीं हुआ करता है। प्रमोद किसी अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त चित्रित किया गया है-

‘‘....नहीं भाई, पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की जरूरत को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई-रत्ती नाप-जोख्कर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने

का दायित्व है, वे अपनी जानें। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह-तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पारकर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब-कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी? उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरी, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था? याद किया होगा, वह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।" प्रमोद के उपर्युक्त अंतर्लाप द्वारा कथावस्तु का उद्घाटन अथवा आरंभ किया गया है, जिससे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि प्रमोद की बुआ की मृत्यु हो चुकी है। वह पापिष्ठा थी अथवा नहीं, यह प्रश्न भी यहाँ उभर कर पाठकों के सामने आ जाता है-क्योंकि इस विषय में स्वयं प्रमोद भी आश्वस्त नहीं है।

कथा के इस प्रकार उपस्थापन के पश्चात् प्रमोद भावनाओं और विचारों में खोकर अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करता है और उसके इस विगत जीवन के साथ ही उपन्यास की नायिका मृणाल का जीवन भी जुड़ा हुआ है। अपनी वंश-परम्परा का परिचय देते हुए प्रमोद स्पष्ट करता है कि उसकी बुआ उससे चार-पाँच वर्ष बड़ी थीं और माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह प्रमोद के माता-पिता के संरक्षण में पाली-पोसी गई थी।

पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही प्रमोद ने मृणाल के अप्रतिम सौंदर्य पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है-

‘‘बुआ का तब का रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है, तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है। पिताजी तो बुआ की मोहिनी मूरत पर रीझ-रीझ जाते थे।"

इस अवतरण द्वारा एक ओर तो उपन्यासकार ने मृणाल की सुन्दरता पर प्रकाश डाला है। जबकि दूसरी ओर विधाता द्वारा सौंदर्य देकर उसकी कीमत वसूलने की बात कहकर पाठकों के अन्तर्मन में यह जिज्ञासा जाग्रत कर दी है कि मृणाल के जीवन में भी अवश्य ही कुछ अनहोनी घटित होनी चाहिए तभी प्रमोद ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

इसके अनन्तर उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही उन घटनाओं का चित्रण किया है जिनसे प्रमोद और मृणाल की घनिष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही इन घटनाओं का उद्घाटन होता गया है कि किस प्रकार मृणाल शीला के भाई के सम्पर्क में आती है और उससे मिलने-जुलने में होने वाली देर के कारण घर पर भावज से पिटती ही नहीं है अपितु उसकी पढ़ाई छुड़वाकर उसका विवाह कर दिया जाता है। आगे की घटनाओं पर प्रकाश भी प्रमोद के आत्मालाप या चिन्तन के माध्यम से ही डाला गया है और उसके स्व-पति से विच्छेद, एक पुरूष के साथ भागकर दूसरे नगर में आ रहने, उसको भी छोड़ देने पर ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा करने वहाँ से भी उखड़कर गन्दे लोगों की बस्ती में रहने की घटनाएँ भी इसी प्रकार विकसित हुई हैं। अतः कथानक-शिल्प की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास की प्रथम विशेषता तो यही है कि उस युग में जब मुंशी प्रेमचन्द कथा-जगत् पर छाए हुए थे और उन्हें उपन्यास सम्राट्

कहकर गौरवान्वित किया जा रहा था, जैनेन्द्र ने उनकी लीक से हटकर एक दूसरे प्रकार का कथानक अपनाया और कथा-योजना में भी एक नूतन प्रकार के कथाशिल्प का प्रयोग किया।

कथानक में विश्वसनीयता का समावेश- वैसे त्यागपत्र की कहानी एक सर्वथा काल्पनिक कहानी ही प्रतीत होती है किन्तु उपन्यासकार ने ऐसे कौशल से काम लिया है कि यह हमको किसी सच्ची घटना पर आश्रित कहानी प्रतीत होती है। इस उद्देश्य के लिए उपन्यासकार ने कृति के आरंभ में ही निम्नांकित टिप्पणी देकर पाठकों के मन में यह भ्राँति उत्पन्न करने की चेष्टा की है कि यह एक सच्ची घटना पर आधारित उपन्यास है-

‘‘सर एम दयाल जो इस प्रांत के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षो से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे। उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था। पीछे कागजों में उनके हस्ताक्षरी के साथ एक पांडुलिपि पायी गयी, जिसका संक्षिप्त सार इतस्ततः पत्रों में छप चुका है। उससे एक कहानी ही कहिए, मूल लेख अंग्रेजी में है। उसी का हिन्दी उल्था यहाँ दिया जाता है।"

उपर्युक्त उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सर एम0 दयाल ने अपनी कोई निजी डायरी अंग्रेजी में लिखी थी। चूँकि डायरी में व्यक्ति के जीवन की सच्ची घटनाएँ ही अंकित हुआ करती है, अतः इसमें भी उनके जीवन का सत्य वृतांत ही रहा होगा। हमारे उपन्यासकार ने और कुछ न करके मात्र यह किया है कि अंग्रेजी में लिखी गई डायरी का हिन्दी में अनुवाद कर दिया है। अतः इसकी धारणाएँ सत्य ही होनी चाहिए।

हाँ, यह मात्र मतिभ्रम उत्पन्न करने का ही प्रयास है, क्योकि इसका ज्ञान थोड़ा-सा विचार करने पर ही हो जाता है। जिस व्यक्ति के कागज-पत्रों का उल्लेख किया गया है, उसका नाम एम0 दयाल है। उपन्यास के अंत में भी यह व्यक्ति जिसका मूल नाम प्रमोद मिलता है, न जाने कैसे एम0 दयाल के नाम से हस्ताक्षर करते दिखाया गया है-

‘‘बुआ, तुम गई। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरम्भ-समारंभ ही छोड़ दूँगा। औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सीखा न जाए, आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

भगवान तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी दो, पर वचन तोडूँ तो मुझे नरक अवश्य ही देना।"

ह. एम0 दयाल

ता0 3-4

‘‘इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी ने अपना त्याग-पत्र मैंने दाखिल कर दिया।"

ह. एम0 डी0

ता0 4-4

हम इस संदर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत करना चाहते हैं कि प्रमोद ने पहले हस्ताक्षर एम0 दयाल के रूप में कैसे किए हैं? एम0 से क्या मजिस्ट्रेट शब्द संकेतित है? यदि यह बात हो तो भी हस्ताक्षर करते हुए व्यक्ति अपने पद को अपने नाम के अंश-रूप में प्रयुत्त नहीं करता। हस्ताक्षरों में दूसरा शब्द 'दयाल' है उपन्यास के प्रारंभिक अंश में लेखक ने 'सर एम0 दयाल' का उल्लेख किया है। हो सकता है कि दयाल प्रमोद का सरनेम रहा हो किन्तु इसमें प्रमोद का कहीं भी उल्लेख नहीं है। जब उपन्यास में सर्वत्र प्रमोद नाम का उल्लेख मिलता है, किन्तु वह व्यक्ति अपने हस्ताक्षर एम0 दयाल के नाम से करता हो, तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि ये दोनों व्यक्ति एक ही हैं? वैसे इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि यदि प्रारंभिक अंश में और उपन्यास के अंत में पी0 कुमार के नाम से भी हस्ताक्षर किए जाते तो भी यह तथ्य इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता था कि इस उपन्यास की सभी घटनाएँ वास्तविक और सच्ची हैं।

मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता- आलोच्य उपन्यास के कथानक-शिल्प की एक अन्य विशेषता इसमें स्थल-स्थल पर मनोवैज्ञानिक चित्रण को स्थान देना है। एक आलोचक ने उचित ही लिखा है कि ''त्यागपत्र उपन्यास की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र मनोविज्ञान का आश्रय लिया गया है।यों तो प्रत्येक उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्वाभाविकता के रक्षार्थ मानव-मन का आश्रय लेता है किन्तु जैनेन्द्र जी की विशेषता यह है कि उन्होंने मानव-मन की गुत्थियों को पकड़ा है और अनका विश्लेषण किया है। मानव की कुंठाए क्या है, उनके कारण क्या है और उनमें अनुरूप कार्य क्या हैं? सम्पूर्ण उपन्यास इसी पर आधारित है और साथ ही यह भी दूसरा मुख्य कार्य-विषय है कि नारी चाहे कितनी ही पतन की ओर क्यों न चली जाए, उसका सहज-स्वाभाविक अहं कभी नहीं मरता। मृणाल के माध्यम से जैनेन्द्र जी ने इस अहं भावना का अत्यंत सशक्त चित्रण किया है।"

यौन कुंठाओं के चित्रण में जैनेन्द्र जी फ्रायड के यौन-सिद्धान्त से विशेष रूप से प्रभावित हैं। 'फ्रायड' का मत है कि मूल रूप में वासना प्रत्येक नर-नारी के मन में विद्यमान है कुछ उसे परिष्कृत रूप में व्यक्त करते हैं और कुछ उसी मूल रूप में। यहाँ तक कि बच्चों तक में भी यह वासना-भावना प्रधान होती है। पुरूष का नारी के प्रति और नारी का पुरुष के प्रति अवस्था-विशेष से आकर्षित होना तो स्वाभाविक है ही, इसके अतिरिक्त भी अवचेतन में यही काम-भावना प्रत्येक अवस्था में विद्यमान रहती है। मृणाल शीला के भाई के प्रति और शीला का भाई मृणाल के प्रति आकर्षित होता है, यह तो अवस्था-जन्म काम-भावना है। जैनेन्द्र जी ने फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित होकर अन्य अवस्थाओं में भी काम-भावना की उपस्थिति मानते है। मृणाल तथा प्रमोद में बुआ-भतीजे का सम्बन्ध है, अवस्था में भी अन्तर है। किन्तु फिर भी लिंग-वैपर्यय होने के कारण दोनों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है। प्रमोद मृणाल का प्रत्येक कार्य करने को तत्पर है, उसकी प्रिय वस्तु उसे भी अच्छी लगती है-शीला का भाई उसे भी अच्छा लगना इसका एक उदाहरण है, और वह प्रत्येक उचिततानुचित कर्म मृणाल की प्रसन्नता के लिए करता जाता है, महज एक आकर्षण के वशीभूत होकर ही।

अभ्यास प्रश्न

---

(1) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. त्यागपत्र उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है।
2. त्यागपत्र उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1937 ई0 है।
3. त्यागपत्र नायिका प्रधान उपन्यास है।
4. त्यागपत्र मनोविश्लेषणात्मक परम्परा का उपन्यास है।

(2) टिप्पणी कीजिए –

1. मृणाल

.....

.....

.....

.....

2. कथानक

.....

.....

.....

.....

(3) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. उपन्यास में.....मुख्य तत्व होते हैं।
2. पात्र योजना में.....पर दिया गया है।
3. संवाद को.....भी कहते है।
4. उपन्यास का.....मुख्य घटनाक्रम से जुड़ा हुआ होना चाहिए।
5. त्यागपत्र में मुख्य पात्र.....है।

12.4 सारांश

आलोच्य उपन्यास की वर्ण्य-वस्तु और उसकी परिणति कुछ ऐसी उलझनमयी है कि स्पष्ट रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि रचनाकार का उद्देश्य या संदेश क्या है? फिर भी जैनेन्द्र ने मृणाल का जिस रूप में चरित्रांकन किया है और उसको अनेकानेक प्रकार के दुःख-दर्द सहन करते चित्रित किया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका ध्यान उन समस्याओं को उभारने की ओर केन्द्रित रहा है; जिनके कारण मृणाल को अंततः वेश्यावृत्ति के लिए विवश होना पड़ता है। इस उपन्यास का रचनाकाल सन् 1937 ई0 है। यद्यपि नारियों की सामाजिक स्थिति में सन् 2012 ई0 तक भी अर्थात् रचना के पच्चहत्तर वर्ष पश्चात् भी विशेष परिवर्तन नहीं आया है, किन्तु उन दिनों तो नारियों की स्थिति और भी अधिक बदतर थी। उन्हें पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं था, यही कारण है कि मृणाल के माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण उसे अपने भाई और भावज का मोहताज होना पड़ता है। उन दिनों प्रेम-विवाह होना अत्यधिक दुष्कर था, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस दृष्टि से आजकल की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन आ गया है। विशेष परिवर्तन न आने पर भी चलचित्रों के प्रभाव तथा सरकार द्वारा अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिए

जाने के कारण आजकल का व्यक्ति प्रेम-विवाह को चतुर्थ-दशक की अपेक्षा अधिक मात्रा में सहन कर सकता है। हाँ, उन दिनों जैसा कि स्वाभाविक था, मृणाल की पढ़ाई ही बंद नहीं कर दी जाती, अपितु उसका शीघ्र विवाह किए जाने की जल्दी में तथा सम्यक् दहेज न जुटा पाने के कारण मृणाल का विवाह अधेड़े उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र नियतिवादी भी परिलक्षित होते हैं। यही कारण है कि वे भाग्य में विश्वास करते हैं- इसका क्या उत्तर है? उत्तर हो अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है। नियति का लेख बंधा है। एक भी अक्षर उसका यहाँसे वहाँ न हो सकेगा। वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं। पर विधि का वह अतर्क्य तर्क किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन है- यह भी कभी पूछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं?"

12.5 शब्दावली

- नियति - प्रारब्ध, पहले से तय
- दुहाजू - शादी शुदा व्यक्ति
- भावज - भाभी
- पुनरावलोकन - पुन: समीक्षा करना

12.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. सत्य

(3) 1. छ:

2. चरित्र चित्रण

3. कथोपकथन

4. शीर्षक

5. 2

12.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं शर्मा, कृष्णदेव - त्यागपत्रः एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास।

12.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र – हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. औपन्यासिक शिल्प अथवा उपन्यास-कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता का विवेचन कीजिए।
2. जैनेन्द्र कृत उपन्यास 'त्यागपत्र' की शिल्पगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।
3. 'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का सोदाहरण विवेचन-विश्लेषण कीजिये।
4. ''त्यागपत्र में घटनाएँ बहुत हैं लेकिन उसकी कथा-संरचना में उनकी भूमिका क्षीण है।" -'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
5. क्या आप जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' को एक सफल उपन्यास मानते हैं? 'त्यागपत्र' की तात्विक समीक्षा करते हुए उत्तर दीजिए।